सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 36
अंक 1

अप्रैल
2003

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विचरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

दृग्गोचरो दीनबन्धु

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले ।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।

भावार्थ

जिस परमात्मा से यह ब्रह्मा आदि रूप जगत प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत के कारणभूत जिन परमेश्वर में यह समस्त संसार स्थित है तथा अनन्तकाल में यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान आज मेरे नेत्रों के समक्ष दर्शन दें।

विशेष लेख

"मेरे श्री गुरुदेव"

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः,
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है, और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणगति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता। इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है, और उनका स्वरूप क्या है यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अन्य अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्री मद्भगवद्गीता के १६वें अध्याय में कहा है :

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत,
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्दघन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सब के सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं **"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"**। इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण हैं और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्टलाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ; सिद्धों के महासिद्ध, सर्वसमर्थ

योगयोगेश्वर व सर्वत: परिपूर्ण है। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो; किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं० गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुये घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे श्रीगुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्गद कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन–चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटी जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना; लगभग ६ वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुये मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुये किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक लीला का अनुसरण करते हुये जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदाशिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो–एक बातें बतलाईं। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से ६–६ मील ७–७ मील की दूसरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुये उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव है और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही

सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है—**"गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तु छिन्नसंशयाः"**। अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती। उनका संकल्प ही **"कर्तुम-कर्तुमन्यथाकर्तुम्"** की शक्ति रखता है मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग १२ वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया—

"प्रज्ञाप्रासादमारूह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुये योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुये व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य आरम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये :—

(१) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था, **"जीवन तत्व साधन"** इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको "वृक" अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़ियों को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि–सी धधकती मालूम पड़ती है। यह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाय। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुये बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता का स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आल्हाद हर समय बना रहता है और उससे

उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साधक दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है **जीवन तत्व साधन**।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए श्री गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(२) **अमर तत्व साधन**–जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुये देखने लग जाते हैं उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं। और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे, किन्तु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(३) **शक्तिपात दीक्षा**–जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, **सिद्धयोग** और **साधन योग**। साधन–योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, और सिद्धयोग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्‌गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं, और वही लोग शक्ति–संचार भी कर सकते हैं। इस "सिद्धयोग" का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सब की तरफ एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये, और स्वायत्ततनु हो कर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् १६१४ के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में

प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई ! हम साधु हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिये। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किन्तु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य से देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेवजी वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्यवान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई १५–१६ साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुये सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्कराकर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो किसका अन्वेषण कर रहे हो ? उन लोगों ने कहा ब्रह्मचारी जी ! हमारे एक भाई साधु रूप में अभी–अभी यहीं थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं ? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चात्ताप है। जब वह यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी नहीं हैं; किन्तु इस आकृति में छिपे हुये कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं। उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये, कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया। श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिये वह हिमालय से उठकरके आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिये पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभुजी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिलकुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे।

सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी ! आप बड़े-बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं ? वह तीन दिन से बिलकुल निराहार है और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिये आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया-- हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी।

श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ की पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभु जी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभु जी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुये कहा-बेटा ! रोते क्यों हो ? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है। तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी। और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाएगी। आकाश-गमन आदि सब ठीक हो जायगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभु जी से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि प्रभो ! हे सर्वशक्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वे लोग भली प्रकार जान गये इस विप्रवेश में छिपे यह अवश्य ही कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहीं से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ।

* * *

प्रभुजी का प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

वर्तमान कलिकाल में आनन्दकन्द परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ही संसार के समस्त प्राणियों के लिए अमरदाता, ज्ञानदाता एवं योग के परम लक्ष्य को देने वाले सत्य स्वरूप ईश्वर ही हैं। भवसागर के भीषण भंवर में घुमड़ते मानवों को कल्याण के लिए वे समय–समय पर योग देह धारण करके सगुण रूप से प्रकट होते रहते हैं। अपनी विभूतियों का प्रकाशन कर जीवों को अपनी ओर खींच लिया करते हैं। यह संसार ऐसे शक्तिमान की ही उपासना अर्चना किया करता है। अखिल लोक पालक श्री प्रभुजी इस संसार को बहुत बड़ी देन हैं। वे कल्याणजीवी महापुरुष हैं, फलतः वे अनेक रूपों और शरीरों में जगत के कल्याण हेतु विचरण करते रहते हैं। जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि के प्रभाव से अस्पृष्य प्रभुजी के लिए संसार में आने और रहने की बाध्यता नहीं होती। ये सिद्धेश्वर अकारण ही दयालु हैं और जीवों पर कृपा करना उनका स्वभाव है। अपनी अहैतुकी कृपाओं की वर्षा करके वे जगत–कल्याण में निमग्न रहा करते हैं। ऐसे सर्वसमर्थ सिद्धों की लीलाओं को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं, क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है। भौतिक जगत के उस पार की वस्तुओं का उसे ज्ञान नहीं होता। उसमें पारदर्शिता नहीं होती। सत्य को ठीक–ठीक देख सकने की क्षमता नहीं होती।

महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज ने बीसवीं शताब्दी में प्रकट होकर अनेक प्रकार से जीवों का कल्याण किया। आज संसार के अनेकानेक व्यक्ति उनके नाम और रूप से परिचित होकर योग तत्व को जान समझकर उस विराट का साक्षात्कार करने के लिए साधनारत हैं ! योग विद्या की ही यह विशेषता है कि जीव को अन्ततोगत्वा परमपद की प्राप्ति करा देते हैं। जब तक मानव योगमार्ग की महिमा एवं शक्ति को नहीं समझता तब तक वह भ्रमित ही रहा करता है और वह तत्व ज्ञान से कोसों दूर होता है। मनुष्य का परम कर्तव्य यही है कि वह योगी गुरु की शरण में जाकर योगाभ्यास करे और आत्म कल्याण की ओर बढ़ता जाये। महाप्रभुजी के रूप में इस विश्व को एक ऐसा सद्गुरु मिला है, जो एक ही समय में अनेक स्थानों पर अपने शरीरों में रहकर योगविद्या का प्रसार करते रहे हैं।

ऐसे योगेश्वर अनेक शरीरों को धारण कर अपने कार्य को पूरा कर पुनः उन शरीरों का संवरण कर लेते हैं। प्रकृति पुरुष के ऊपर संचालन करने वाले ऐसे महापुरुष **सदैव मुक्ताः सदैव ईश्वराः** के रूप में होते हुए भी जीवों के उद्धार की करुणामयी भावना से शरीरों को ग्रहण करते व छोड़ते रहते हैं। ऐसे योगी प्रज्ञा प्रासाद पर आरूढ़ योगेश्वर संसार को इस प्रकार से देखते हैं, जैसे पर्वत शिखर पर बैठा हुआ व्यक्ति भूमि वालों को देखा करता है। इसी का उदाहरण बनकर श्रीप्रभु जी इस पृथ्वी मण्डल पर आये और योग का पवित्र कार्य उन्होंने आरम्भ

कर दिया। उन्होंने शक्तिपात दीक्षा की परम्परा को पुनर्जीवित किया। शक्तिपात दीक्षा प्राप्ति का हर व्यक्ति अधिकारी नहीं हो सकता। हमारे योग शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है। वह है सिद्धयोग और साधनयोग, साधनयोग में साधक अभ्यास करता–करता धीरे–धीरे लक्ष्य की ओर बढ़ता है। इसे ही योग दर्शन में क्रिया योग के नाम से कहा गया है। दूसरा है–सिद्धयोग इसमें सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है। वह अल्प समय में ही उतनी ऊँचाई पर पहुँच जाता है, जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सिद्ध योगी राज ही हुआ करते हैं। वही लोग शक्तिपात किया करते हैं। अपने अधिकारी शिष्यों को जन सम्पर्क से दूर हिमालय की कंदराओं में रखकर योग की गूढ़ साधनाओं को कराके उन्हें तत्व विजयी बनाकर सैकड़ों वर्षों तक आत्म दर्शन व स्वरूप स्थिति के लिए लगाये रखते हैं। महाप्रभुजी के अनेकों शिष्य हिमालय में आज भी साधनालीन हैं।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अनेकों शरीर धारण करते तथा त्यागते रहते हैं इसी क्रम में प्रभु रामलाल जी के रूप में आज से ११५ वर्ष पूर्व गुरुओं की नगरी अमृतसर शहर में सुविख्यात ज्योतिर्विद स्वनामधन्य पं० गण्डाराम जी के घर में चैत्र शुक्ला नवमी के पावन दिन आपका आविर्भाव हुआ था। जन्म लेने के बाद शैशव में ही आप के अनेकानेक अलौकिक चरित्र देखने को मिलते हैं। १५ वर्ष की अल्प अवस्था में घर त्याग दिया, तत्पश्चात कुरुक्षेत्र, हरिद्वार आदि तीर्थ स्थलों में विचरण करते हुए सम्पर्क में आने वाले लोगों का कल्याण करते रहे। २२–२३ वर्ष की अवस्था में श्री वृन्दावनधाम तथा बृज के अन्य क्षेत्रों में विचरण करते हुए सन् १६११ ई. के लगभग आपका आगमन संवाई गाँव में हुआ। वहाँ एकान्त जंगल में भक्तों के आग्रह पर आप निवास करने लगे। उसी समय भक्तजनों ने उनके लिए एक गुफा का निर्माण किया और प्रार्थना की कि प्रभुजी आप इस गुफा में ही रहें, अन्यत्र जाने का विचार न करें। भक्तों की इच्छा भगवान हमेशा ही पूरी करते हैं। श्री प्रभुजी ने उनके आग्रह और संस्कार को देखकर २–३ वर्ष तक निवास किया और अपने चरण रज से इसको परम पावन बनाया, यहीं पर रहते हुए लोगों पर अलौकिक कृपाएँ की। जिनकी चर्चा आज भी यहाँ के जन–जन में चर्चित है। किन्तु स्वच्छन्द योगी को कोई अधिक समय तक के लिए बांधकर नहीं रख सकता। इसी के फलस्वरूप श्री प्रभुजी अपने गुरुदेव सदाशिव से भेंट करने के लिए यहाँ से आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। उनसे सेवित इस भूमि पर कालान्तर में हमारे गुरुदेव अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इसे परम तीर्थ मानकर इस स्थान को सिद्ध गुफा के रूप में विश्व प्रसिद्ध बना दिया, और यह स्थान योग सिद्ध पीठ के रूप में सारे विश्व में प्रसिद्ध है। महाप्रभुजी के शिष्य श्री प्रभुजी के अनुयायी एवं शिष्य आपको शिव स्वरूप मानकर ही आपकी पूजा अर्चना कर अपने को धन्य मानते हैं।

प्रभुजी द्वारा सिंचित योग परम्परा को जन–जन तक पहुँचाने का संकल्प लेकर गुरुदेव

योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने बहुआयामी प्रयास प्रारम्भ किए। केवल प्रवचन ही नहीं अपितु योग के प्रायोगिक पक्ष पर भी उन्होंने विशेष बल दिया। अलौकिक योग क्रियाओं पर प्रकाश डालने और जनसामान्य तक योगशिक्षा के प्रचार–प्रयास हेतु उन्होंने **सिद्धयोग** का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह मासिक पत्रिका अपनी आयु के पैंतीस वर्ष पूरा कर अप्रैल अंक के साथ ही नये वर्ष में प्रवेश कर रही है। यह हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित होने वाली योग एवं आध्यात्मिक पत्र–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आत्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन वेद और श्रुति में योग ही बताया है। योग के गूढ़ एवं दुरूह सिद्धान्तों का विशद् विवेचन जिस प्रकार से यह पत्रिका करती रही है अन्य पत्रिकाओं में नहीं पाई जाती है। परम पूज्य गुरुदेव ने अपने दिव्य योग सिद्धयोग के सन्देश को जन–जन तक पहुँचाने का इसे सशक्त माध्यम समझा और इसलिये अपने योग प्रचार कार्यक्रम का इसे अभिन्न अंग बनाया।

अध्यात्म ज्ञान अथवा योग के अन्तरंग साधन की विशद चर्चा तो इसमें रहती ही है साथ–साथ बहिरंग साधन भी इसके पूरक अंग के रूप में जुड़े रहते हैं। आज सिद्धयोग प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक उच्चकोटि की पत्रिका के रूप में उभर कर आई है। इससे भारत की प्राचीन संस्कृति की गरिमा की प्रतिष्ठापना के स्तम्भ के रूप में सदाचार, संयम, सत्य, अहिंसा आदि धर्म के प्राणभूत तत्वों का प्रतिपादन किया जाता है। योग में ही यह क्षमता है कि समाज में शान्ति, भ्रातृत्व भाव, सहिष्णुता एवं प्रेम के दिव्य सन्देश को व्यापक रूप दे सकें। योगी अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी रामतीर्थ जैसे महापुरुषों ने इसकी महानता को समझकर इसका जन–जन में प्रचार किया है। उन्होंने अपने जीवन में योग को आत्मसात किया और मानव जीवन में इसकी परमोपादेयता को स्वीकारा है। योग के द्वारा ही मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव है। तत्पश्चात् योग ध्यान से आत्मज्ञान को सहज पाया जा सकता है। भारत के महान योगियों ने योग का अवलम्ब लेकर इस प्रकाश से विश्व को प्रकाशित किया है। इसी योग विद्या के कारण ही भारत विश्व का गुरु रहा है और बना रहेगा। इस पत्रिका के माध्यम से असंख्य साधकों के मन की योग सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ एवं संशय मिटते हैं। जब तक व्यक्ति संशयात्मा रहा करता है तब तक वह अध्यात्म मार्ग में चल ही नहीं सकता। भगवान् ने गीता में **'संशयात्मा विनश्यति'** की बात कही है। संशययुक्त व्यक्ति में श्रद्धा नहीं पनपती है। जिसके अभाव में वह साधना के मार्ग से दूर भटक जाता है।

इस पत्रिका में किसी प्रकार के विज्ञापन स्वीकार नहीं किये जाते हैं। इसलिये इस प्रकार की पत्रिकायें प्रायः घाटे में ही रहती हैं। यह पत्रिका भी घाटे की घाटियों से गुजरती हुई गुरु कृपा से अविछिन्न रूप से अबाध गति से चल रही है। प्रति वर्ष इसमें २५–३० हजार का घाटा रहता है। जिसे हमारे उदारमना गुरुभाई आर्थिक सहयोग से पूरा कर देते हैं। मुद्रण एवं कागज के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसलिये प्रायः प्रतिवर्ष इसका शुल्क बढ़ाना पड़ जाता है। गुरुदेव के लाखों शिष्य हैं; किन्तु सिद्धयोग के ग्राहक या पाठकों की संख्या थोड़ी है। आवश्यक

है कि गुरु–शिष्य इस पावन कार्य में रुचि लें और कम से कम पाँच नये ग्राहक अवश्य बनायें। इससे योग में रुचि रखने वाले साधकों के कल्याण का स्रोत खुलता चला जायेगा। सिद्धयोग के प्रचार–प्रसार में लगे लोगों का भी उत्साहवर्धन होगा तथा उन्हें भी यह सुकृत करने का आत्मसंतोष रहेगा। गुरु तत्व की महिमा का गुणगान एवं योग के अटल सिद्धान्त मनुष्य को निश्चित ही परमश्रेय की ओर ले जाते हैं।

इस अवसर पर मैं विद्वान लेखकों एवं मनीषियों का हृदय से आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनके अथक प्रयास से सुन्दर एवं वैदुष्यपूर्ण लेख पाठकों तक पहुँचते हैं। गुरुभाई आचार्य चन्द्रहास शर्मा, डॉ० विजय सिंह, संस्कृत के उद्‌भट विद्वान व गुरुदेव के लाडले शिष्य श्री द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ आश्रम के संचालक भाई श्री ओम प्रकाश पालीवाल जी, श्री पूर्णचन्दपन्त शास्त्री, कु० रुक्मिणी वर्मा, राजेश कुमार श्रीवास्तव, प्रभृति सभी लेखक धन्यवाद के पात्र हैं। इनके विद्वतापूर्ण लेखों से साधकों को साधना का सही मार्ग मिलता है। और इधर–उधर के भटकाव से बच जाते हैं एवं गुरुतत्व को ठीक–ठीक समझकर साधना में आरूढ़ हो जाते है। क्षण–क्षण स्मरणीय हमारे गुरुदेव योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज तो इस पत्रिका के सूत्रधार हैं ही उन्होंने ही इस वटवृक्ष को लगाया है, अब इसका योग क्षेम भी उन्हीं के हाथों में है ! सदाशिव स्वरूप महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरण कमलों का ध्यान करते हुये इसकी निरन्तर सफलता के लिये कृपा व आशीर्वाद की हम कामना करते हैं, उनकी कृपा से ही साधकों के सभी कार्य सिद्ध होते हैं !

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु
प्रसादात्तस्य धूर्जटेः
जाह्नवी फेनलेखेव
यन्मूर्ध्नि शशिनः कला।

* * *

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (3/17)

'जो परमपुरुष परमेश्वर समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है तथा सबका स्वामी, सबका शासक और सबसे बड़ा आश्रय है, उसकी शरण जाना चाहिये।'

कर्मयोग क्या है

(रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी)

कर्मयोग यानी कर्म के द्वारा ईश्वर के साथ योग। अनासक्त होकर किया जाने पर प्राणायाम ध्यानधारणादि अष्टांग योग या राजयोग भी कर्मयोग ही है। संसारी लोग अगर अनासक्त होकर, ईश्वर पर भक्ति रखकर, उन्हें फल समर्पण करते हुए संसार के कर्म करें तो वह भी कर्मयोग है। फिर ईश्वर को फलसमर्पण करते हुए पूजा, जप आदि करना भी कर्मयोग ही है। ईश्वर लाभ ही कर्म योग का उद्देश्य है। सत्वगुणी व्यक्ति का कर्म स्वभावतः ही छूट जाता है—प्रयत्न करने पर भी वह कर्म नहीं कर पाता। जैसे, गृहस्थी में बहू के गर्भवती हो जाने पर सास धीरे-धीरे उसके काम-काज घटाती जाती है, और जब उसके बच्चा पैदा हो जाता है तब तो उसे केवल बच्चे की देखभाल के सिवा और कोई काम नहीं रह जाता। जो सत्वगुणी नहीं है, उन्हें संसार के सभी कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। उन्हें ईश्वर के चरणों में अपना सब कुछ समर्पण कर संसार में धनी व्यक्ति के घर दासी की तरह रहना चाहिए। यही कर्मयोग है। जितना सम्भव हो, ईश्वर का ध्यान तथा नाम जपते हुए, उन पर निर्भर रहकर अनासक्त भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करना—यही कर्मयोग का रहस्य है।

भगवान को तुम एक गुना जो कुछ अर्पित करोगे, उसका हजार गुना पाओगे। इसीलिए सब कार्य करने के बाद जलांजलि दी जाती है—श्रीकृष्ण को फल-समर्पण किया जाता है। युधिष्ठिर जब सब पाप श्रीकृष्ण को अर्पण करने जा रहे थे, तब भीम ने उन्हें सावधान करते हुए कहा, 'ऐसा काम मत करो,—कृष्ण को जो कुछ अर्पण करोगे, उसका हजार गुना तुम्हें प्राप्त होगा।'

कर्ममार्ग में भक्ति का महत्व

विशेष इस कलियुग में अनासक्त होकर कर्म करना बहुत ही कठिन है। इसलिए इस युग के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि की अपेक्षा भक्तियोग ही अच्छा है। परन्तु कर्म 'कोई छोड़ नहीं सकता। मानसिक क्रियाएँ भी कर्म ही है।' 'मैं विचार कर रहा हूँ'—यह भी कर्म ही है। प्रेम-भक्ति के द्वारा कर्म मार्ग सहज हो जाता है। ईश्वर पर प्रेम-भक्ति बढ़ने से कर्म कम हो जाता है और जो कर्म रहता है उसे उनकी कृपा से अनासक्त होकर किया जा सकता है। भक्तिलाभ होने पर विषय कर्म—धन, मान, यश आदि अच्छे नहीं लगते। मिश्री का शरबत पीने के बाद गुड़ का शरबत भला कौन पीना चाहेगा ? ईश्वर में भक्ति हुए बिना कर्म बालू की भीत की तरह निराधार है। पहले भक्ति के लिए प्रयत्न करो। फिर तुम चाहो तो ये सब स्कूल, दवाखाने आदि आप ही बन जाएँगे। पहले भक्ति फिर कर्म। भक्ति के बिना कर्म व्यर्थ है। इस कलियुग के लिए नारदीय भक्ति ही श्रेयस्कर है। शास्त्रों में जिन सब कर्मों का विधान है उन्हें करने की आजकल फुरसत ही कहाँ ? आजकल के बुखार में 'दशमूल काढ़ा' नहीं चलता उस काढ़े का असर होने के पहले ही रोगी ठण्डा हो जाता है। अब तो 'फीवर मिक्श्चर' के दिन हैं। भक्त—कर्म के भार के कारण भगवान में मन नहीं लगाया जा सकता। श्रीरामकृष्ण—हाँ, यह ठीक

है। परन्तु ज्ञानी अनासक्त होकर काम कर सकता है, इस कारण उन पर कर्म का परिणाम नहीं होता। यदि तुम हार्दिक भाव से यह चाहो तो भगवान् तुम्हें सहायता करेंगे और धीरे-धीरे तुम्हारा कर्मबन्धन दूर हो जाएगा।

एक बार श्रीरामकृष्ण ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से कहा था-"तुम्हारा कर्म सात्विक कर्म है। तुम दया से प्रेरित हो परोपकार के कर्म करते हो-यह सत्वगुण ही प्रेरणा है। अगर यह दया-दाक्षिण्य, दान आदि भक्ति सहित, निष्काम होकर किया जा सके तो इससे ईश्वरलाभ होता है।' क्या केवल ध्यान के समय ही ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और दूसरे समय उन्हें भूले रहना चाहिए ? मन का कुछ अंश सदा ईश्वर में लगाए रखना चाहिए। तुमने देखा होगा, दुर्गा पूजन के समय देवी के पास एक दीप जलाना पड़ता है। उसे सदा जलाए रखा जाता है, कभी बुझने नहीं दिया जाता। उसके बुझ जाने पर गृहस्थ का अमंगल होता है। इसी प्रकार हृदय कमल में इष्टदेवता को प्रतिष्ठित करने के बाद उनके स्मरण-चिन्तन रूपी दीपक को सदा प्रज्वलित रखना चाहिए। संसार के काम-काज करते हुए बीच-बीच में भीतर की ओर दृष्टि डालकर देखते रहना चाहिए कि यह दीपक जल रहा है या नहीं।

सेवाभाव से किया जाने वाला कर्म पूजा के समान है। एक दिन श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म की चर्चा के प्रसंग में श्रीरामकृष्ण ने कहा-"इस मत में मनुष्य को इन तीन बातों का पालन करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया जाता है-भगवान के नाम में रुचि, जीवों पर दया, वैष्णवों का पूजन। जो नाम है, वही ईश्वर है, नाम और नामी अभिन्न है-यह जानकर सदा अनुराग सहित नाम लेते रहना चाहिए। कृष्ण और वैष्णव, भक्त और भगवान अभिन्न हैं। यह जानकर सदा साधु भक्तजनों की श्रद्धापूर्वक सेवा वन्दना करनी चाहिए तथा यह जगत् संसार श्रीकृष्ण का ही है इस बात की हृदय में धारणा कर सब जीवों पर दया, ...।" सब जीवों पर दया' इतना कहते ही श्रीरामकृष्ण एकाएक समाधि-मग्न हो गए। कुछ देर बाद अर्धबाह्य अवस्था में आकर वे कहने लगे, "जीवों पर दया ? जीवों पर दया ? धत्मूर्ख ! तू स्वयं कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा ? दया करने वाला तू कौन है ? नहीं-नहीं 'जीवों पर दया' नहीं-'शिवबुद्धि से जीवों की सेवा।'"

कर्म उपाय है, उद्देश्य नहीं

कुछ उत्साही समाज सुधारकों से श्री रामकृष्ण ने कहा-"तुम लोग जगत् का उपकार करने की बात कहते हो। पर जगत् क्या इतनी छोटी चीज है ? और फिर जगत् का उपकार करने वाले भला तुम कौन हो ? पहले साधन भजन के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर लो, उनका लाभ कर लो। वे शक्ति दें तभी तुम लोगों का हित कर सकते हो, अन्यथा नहीं।" एक भक्त-महाराज, जब तक उनकी प्राप्ति न हो तब तक क्या सब कर्म त्याग दें ? श्रीरामकृष्ण-नहीं, कर्म त्याग क्यों दोगे ? ईश्वर का चिन्तन, उनका नाम गुणगान, उपासना आदि नित्यकर्म-यह सब करते रहना चाहिए। भक्त और सांसारिक कर्म ? विषयकर्म ? श्रीरामकृष्ण-हाँ उन्हें भी

किया करो—संसार—यात्रा के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही। परन्तु साथ ही निर्जन में रोते हुए प्रभु से प्रार्थना करनी होगी, ताकि कर्म निष्काम भाव से किए जा सकें।

तुम्हारे लिए कर्म का त्याग करना सम्भव नहीं। तुम्हारी इच्छा हो या न हो, तुम्हारा स्वभाव तुमसे कर्म करवाएगा। इसलिए अनासक्त होकर कर्म करो। अनासक्त होकर कर्म करने से ईश्वर लाभ होता है। अनासक्त होकर कर्म करना अर्थात् कर्मफल की आकांक्षा न रखना। ईश्वर लाभ जीवन का उद्देश्य है और निष्काम कर्म उसका उपाय। निष्काम कर्म एक उपाय है—उद्देश्य नहीं; जीवन का उद्देश्य है। ईश्वर लाभ। कर्म काण्ड आदि है—वह उद्देश्य नहीं हो सकता। कर्म को जीवन का सर्वस्व मत समझो। ईश्वर से भक्ति के लिए प्रार्थना करो। यदि सौभाग्यवश भगवान् तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएँ, तो क्या तुम उनसे अस्पताल—दवाखाने, कुएँ—तालाब, रास्ते धर्मशालाएँ इन्हीं सब के लिए प्रार्थना करोगे ? नहीं ये सब चीजें तभी तक सत्य प्रतीत होती है, जब तक भगवान के दर्शन नहीं होते। एक बार उनके दर्शन हो जाएँ तो ये सब स्वप्नवत्, अनित्य, असार लगने लगते हैं। तब साधक उनसे केवल ज्ञान और भक्ति की ही प्रार्थना करता है। श्रीरामकृष्ण—शम्भु मल्लिक ने लोकहित के लिए अस्पताल, दवाखाने, स्कूल रास्ते, तालाब आदि बनवाने की बात कही थी। मैंने कहा, सामने जो काम आ पड़े, जिसे किए बिना चल नहीं सकता, ऐसे काम को निष्काम भाव से करना चाहिए। जान बूझकर स्वयं को बहुत अधिक कामों में उलझाना ठीक नहीं, इससे मनुष्य ईश्वर को भूल जाता है।

कर्म तथा नैष्कर्म्य

यदि किसी में शुद्ध सत्वगुण का उदय हो, तो वह सदा केवल ईश्वर चिन्तन ही करता है, उसे और कुछ भी नहीं भाता। किसी—किसी को प्रारब्धवश जन्म से ही शुद्ध सत्वगुण प्राप्त होता है। कामनाशून्य होकर कर्म करने का प्रयत्न करते हुए अन्त में शुद्ध सत्वगुण प्राप्त होता है। रजोमिश्रित सत्वगुण के रहने पर धीरे—धीरे मन नाना दिशाओं में जाने लगता है। इससे मैं जगत् का उपकार करूँगा' इस प्रकार का अभिमान आ जुटता है इस सामान्य जीव के लिए जगत का उपकार करने जाना बड़ा कठिन है। पर यदि कोई कामनाशून्य होकर परोपकार के लिए कर्म करे तो उसमें दोष नहीं,' इसे निष्काम कर्म कहते हैं।

इस प्रकार के कर्म करने का प्रयत्न करना बहुत अच्छा है। पर सब लोग यह नहीं कर पाते। यह बड़ा कठिन है। सभी को कर्म करना पड़ता है। एक—दो जन ही कर्म त्याग कर सकते हैं। एक—दो लोगों में ही शुद्ध सत्वगुण देखने को मिलता है। निष्काम कर्म करते—करते रजोमिश्रित सत्वगुण धीरे—धीरे शुद्ध सत्वगुण में परिणत होता है। शुद्ध सत्व के आते ही उनकी कृपा से ईश्वर लाभ होता है। साधारण आदमी शुद्ध सत्व की अवस्था को नहीं समझ पाते। ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होने पर कर्मत्याग अपने आप हो जाता है। ईश्वर जिन लोगों से कर्म करवा रहे हैं, उन्हें करने दो। जिनका समय आ गया है, वे सब छोड़कर कहें,—'मन, हृदय में विराजमान माँ को तू देख और मैं देखूँ और कोई न देखे।'

सन्ध्या गायत्री में लीन होती है गायत्री प्रणव समाधि में लीन होता है। इस प्रकार सन्ध्यादि कर्म का समाधि में लय होता है। जब तक सच्चिदानन्द में मन लीन न हो जाए, तब तक उन्हें पुकारना और संसार के काम–काज करना, दोनों बातें चल सकती हैं। उनमें मन तल्लीन हो जाने पर कोई काम करने की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे मानो कोई कीर्तन गा रहा है–'निताई आमार माता हाथी।' (मेरा नित्यानन्द मतवाला हाथी है) पहले जब वह गाना शुरू करता है तब गीत के शब्द, राग, ताल, मान, लय, सभी बातों पर ध्यान रखते हुए सही ढंग से गाता है। फिर जब गीत के भाव में उसका मन थोड़ा मग्न होता है तब वह सिर्फ 'माता हाथी, माता हाथी' ही कहता है। फिर जब उस भाव में मन और भी तल्लीन हुआ तब वह सिर्फ 'हाथी, हाथी' ही कहता है। अन्त में जब मन पूरी तरह तल्लीन हो जाता है। तब वह 'हाँ' कहकर ही भावमग्न होकर चुप हो जाता है। इसलिए कहता हूँ, शुरू–शुरू में कर्म की बड़ी चहल पहल रहती है। परन्तु तुम ईश्वर की ओर जितना ही अग्रसर होओगे, उतना ही तुम्हारा कर्म कम होता जाएगा। अन्त में सर्वकर्म त्याग होकर समाधि होगी। समाधि होने के बाद प्रायः देह नहीं टिका करती। किसी–किसी की देह लोग शिक्षा के लिए रह जाती है। जैसे नारदादि ऋषि और चैतन्यदेवादि अवतारों का हुआ। कुआँ खोद चुकने के बाद कोई–कोई कुदाल, टोकरी आदि की विदाई कर देते हैं, पर कोई–कोई उन्हें रख देते हैं–सोचते हैं, रहने दो, मुहल्लेवालों में से किसी के काम आएगा। ऐसे महापुरुष लोग जीवों के दुःख देखकर कातर होते हैं। ये ऐसे स्वार्थी नहीं होते कि सोचें हमें ज्ञानलाभ हुआ कि सब हो गया।

* * *

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।।

(२/१/१५)

'जिस प्रकार निर्मल जल में मेघों द्वारा सब ओर से बरसाया हुआ निर्मल जल वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतमवंशीय नचिकेता! एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तम ही सब कुछ है–इस प्रकार जानने वाले मुनि का आत्मा परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है अर्थात् परमेश्वर में मिलकर तद्रूप हो जाता है।'

गुरु

स्वामी मुक्तानन्द

प्रत्येक ध्यान–शिविर का एक ही उद्देश्य होता है–अपने अन्तरहृदय को खोलने में सहायता प्राप्त करना। हम अपने अंतर में बद्ध हैं। बद्ध होने का कारण है और स्वयं को खोलने का भी कारण है। तुमने अपने अज्ञान के कारण स्वयं को बद्ध किया और एक बार फिर, ज्ञान के द्वारा स्वयं को मुक्त करोगे।

आजकल गुरु–बाजार गर्म है। वह घटोत्कच के माया–बाजार जैसा है। भारत के प्राचीन महाकाव्य 'महाभारत' में शीघ्रता में आयोजित एक विवाह का वर्णन है। विवाह स्वयंवर–प्रथा के अनुसार था जिसमें किसी राजकुमारी को वहाँ एकत्र राजकुमारों में से किसी एक को वर के रूप में चुनना था। ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर प्रत्येक राजकुमार को सुन्दर वस्त्रों की आवश्यकता थी, लेकिन विवाह शुभ मुहूर्त में शीघ्र ही होने वाला था और समय शीघ्रता से व्यतीत होता जा रहा था। अतः घटोत्कच नामक एक व्यक्ति ने माया की शक्ति से बहुत सारे कपड़े तैयार किये और सारे राजकुमारों ने माया बाजार से अच्छे–अच्छे कपड़े खरीदे। राजकुमारी जयमाल लिये अपनी पसन्द का राजकुमार खोजने लगी। उसी क्षण माया निर्मित सारे सुन्दर वस्त्र गायब हो गये और राजकुमार अपने पुराने वस्त्रों में दिखाई देने लगे। आज के गुरु घटोत्कच के माया बाजार सरीखे हैं।

आत्म–ज्ञान के लिये गुरु–ज्ञान अत्यावश्यक है, ठीक उसी प्रकार जैसे विषय की उचित शिक्षा प्राप्त करने के लिये योग्य शिक्षक आवश्यक होता है। हम गुरुगीता पाठ के समय प्रतिदिन पढ़ते हैं :

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम्।

गुरु कौन है ? ब्रह्मानन्दम्। ब्रह्म का आनन्द। वह सर्वश्रेष्ठ आनन्द का धनी है, स्वामी है। वह ज्ञान की साकार मूर्ति है। वह नाक, आँख, मुख, हैट और काले चश्मेवाला शरीर नहीं है। उसका शरीर ज्ञानमय है। वह द्वैत–रहित है, नर–नारी, अमीर–गरीब, काले–गोरे, पूर्व–पश्चिम, उच्च–नीच, सत्–असत् के भेदों से रहित है। वह धर्म के नाम पर कलह नहीं फैलाता।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि।।

गुरु सबमें समरूप से व्याप्त है। नित्य एवं अनादि अनन्त है। गुरु को २५, ३०, ४० या ५० वर्ष का नहीं कहा जा सकता। उसका ज्ञान अचल है। आज के गुरु जनरुचि के परिवर्तन के साथ अपनी शिक्षाओं में परिवर्तन कर रहे हैं, लेकिन सद्गुरु दूसरों की परवाह नहीं करता और किसी के विश्वासों के अनुसार अपनी शिक्षाओं में फेर बदल नहीं करता। उसका ज्ञान सदा अपरिवर्तनीय रहता है। वह दूसरों को अपने वाग्जाल का शिकार नहीं बनाता। उसने ५५ वर्ष पूर्व जो कहा था, वही आज कह रहा है और कल भी कहेगा। उसकी शिक्षा कल भी वही होगी जो उसने सौ साल

पहले दी थी।

सद्गुरु साक्षी चैतन्य के रूप में सर्व प्राणियों में वास करता है तथा उसकी दृष्टि प्रत्येक की गतिविधि पर रहती है। वह सकारात्मक-नकारात्मक भावों से पृथक रहता है और सत्व, रज, तम तीनों गुणों से अतीत होता है। कुछ गुरु अत्यन्त सात्विक प्रकृति के तथा विनम्र, हँसमुख, मधुरभाषी होते हैं। दूसरे रजोगुणी, घमंडी गुरु होते हैं। वे अन्य गुरुओं की निन्दा, आलोचना में व्यस्त रहते तथा स्वयं को 'सद्गुरु' प्रचारित करते रहते हैं। लेकिन सद्गुरु त्रिगुणातीत होता है। वह अच्छी-बुरी भावनाओं से दूर होता है, वही सद्गुरु है। उसे मेरा प्रणाम ! गुरु-महिमा के वर्णन के प्रसंग में सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने उनकी स्तुति करते हुए कहा है, "हे सद्गुरु की अनुग्राहिका दृष्टि ! हे सद्गुरु की दयादृष्टि ! आप में परमेश्वर की अनुग्राहिका शक्ति व्याप्त है। यह सर्वविदित है कि आप परम, पवित्र दिव्य एवं निरन्तर आनन्द की वृष्टि करने वाले हैं।" सद्गुरु तुम्हें नशीले पदार्थ नहीं देता, उच्छृंखल जीवन पद्धति नहीं देता और तुम्हारी इच्छानुसार आम भर्ती नहीं करता है। सद्गुरु वैसे अधिक से अधिक शिष्यों की फौज नहीं खड़ी करता। आज के गुरु शिष्यों की योग्यता न देख, केवल उनकी संख्या देखते हैं।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं : "विश्व में भेददृष्टि रखना सर्पदंश के समान है। यदि साधक में कृपा की तरंग और प्रेमामृत की बाढ़ आ जाय और वे तटों को पारकर बहने लगें तो भला कौन दुःखी-कष्टी रह सकेगा ? दुःखों की ज्वाला उसे कैसे छू सकेगी ?"

आज, हम सब आसक्ति, लोभ, द्वेष, घृणा तथा अन्य विभिन्न प्रकार की कुवृत्तियों की आग में जल रहे हैं। क्या हम सचमुच जीवित हैं ? हम सब जल चुके हैं। लेकिन ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है-"हे गुरुदेव ! आपकी कृपादृष्टि प्राप्त होने पर शिष्य को दुःख कैसे जला सकते हैं ? हे कृपा की करुणापूर्ण दृष्टि !"

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं : "क्योंकि आप प्रेम से प्रकाशित हैं, अतः आप भक्तों की परब्रह्म की आनन्दप्राप्ति की इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हैं। आप उनकी आत्म-साक्षात्कार की इच्छा पूर्ण करते हैं। आप गुरु की अनुग्राहिका शक्ति हैं।"

कहा गया है कि परमेश्वर-निरन्तर पाँच कार्य करता है। यह उसकी लीला है। ये पाँच कार्य हैं : सृष्टि, पालन, संहार, गोपन एवम् अनुग्रह। अनुग्रह परमेश्वर का पाँचवाँ कार्य है।

गुरु-कृपा से रीढ़ की हड्डी के मूल में, मूलाधारचक्र में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है, "गुरुदेव मूलाधार चक्र में, पराशक्ति की गोद में, शिष्यों को बालकों की तरह रख देते हैं। वे उन्हें हृदय के अन्तराल के पालने पर झुलाते हैं और उन पर आत्मज्ञान का पंखा झुलाते हैं। वे शिष्यों को मोती, हार कर्णाभूषण, अंगूठी अथवा कंगन देने के बजाय, उन्हें परमानन्द एवं पूर्णामृत से विभूषित करते हैं। फिर भी वे बच्चे हैं और बच्चों का स्वभाव रोना, चिल्लाना होने से उनके मनबहलाव एवं उनके मन को इधर-उधर भटकने से रोकने के लिये, वे उन्हें अन्तर का दिव्य संगीत (लोरी) सुनाते हैं। उन्हें शान्ति पूर्वक सुलाने के लिये वे समदृष्टि

अद्वैतभाव का आनन्द प्रदान करते हैं। इस प्रकार गुरु उनका पालन पोषण करने वाली माता है। तब शिष्य के हृदय से काव्य प्रस्फुटित होता है, ज्ञान की असीम धारा प्रवाहित होती है। इसीलिये मैं गुरुदेव की शीतल छाया में सदा वास करता हूँ। हे सद्गुरुदेव की कृपा दृष्टि ! आपका कृपामृत प्राप्त करने वाला उस ब्रह्म के तुल्य हो जाता है जो असीम ज्ञान का प्रदाता है।"

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं : "अपने गुरुदेव श्रीनिवृत्तिनाथ की कृपाप्राप्ति के पश्चात् मुझ में वेदों के छन्दों के संशोधन की शक्ति प्राप्त हो गयी। उस कृपा के कारण सारे वेदों का ज्ञान मुझमें प्रवेश होने लगा। हे माँ ! तुम समृद्धिपूर्ण हो, सम्पूर्ण सम्पत्तियों की जननी हो।" जो व्यक्ति निरन्तर इस भावना में लीन रहता है कि "मैं ब्रह्म हूँ, मैं परशिव हूँ" वह सम्पूर्ण समृद्धियों का स्वामी बन जाता है। शैविज्म का कथन है : "हे सद्गुरु की कृपा दृष्टि ! आप भक्तों की मनोकामनापूर्ति के लिये कल्पवृक्ष हैं। आप केवल मेरी ही नहीं; अपितु अखिल विश्व की आत्मा हो।" विश्न का कथन है : "ऐसे गुरु मेरे तुल्य हैं।"

गुरु सृष्टि के आदिकाल से हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में परशिव आदि गुरु थे। मैंने अभी कहा था कि उनके पाँच कार्य हैं जिसमें पाँचवाँ कार्य अनुग्रह करना है सारे गुरु अनुग्रह–प्राप्ति से रचित हैं। वायु, जल तथा अन्य तत्वों के साथ ही गुरु भी सृष्टि के प्रारम्भ में थे। यदि कोई गुरुपरम्परा को निर्मूल करना चाहे तो वैसा नहीं कर सकता; क्योंकि गुरु परशिव के पाँच कार्यों में से एक हैं। इस विशाल विश्व के निर्माता गुरु शब्द का लक्ष्य है।

'गुरु' शब्द में 'गु' का अर्थ अन्धकार और 'रु' का अर्थ प्रकाश है। गुरु वह है जो शिष्य के अन्धकार को दूर कर उसमें प्रकाश भर दे, यह नहीं कि शिष्य की सारी सम्पत्ति छीनकर उसे भीख माँगने के लिए छोड़ दे। आज जनता उन गुरुओं का विरोध करती है जो स्वयं में गुरु–शक्ति का अभाव होने पर भी गुरु की गद्दी पर विराजमान होते हैं। गुरु–परम्परा अखण्ड है। उस परम्परा एवं गुरुत्व को प्राप्त किया सद्गुरु है। कुछ पुस्तकें पढ़कर अथवा दस–पाँच आदमियों का झुण्ड बनाने पर, कोई अपने आप गुरु नहीं बन जाता। किसी ऐसे सिद्धगुरु की जो दिव्य शक्ति में स्वयं लीन हो चुका हो, उसकी कृपा प्राप्ति के पश्चात् ही कोई गुरु बनता है। गुरुत्व प्राप्त किये बिना गुरु बन बैठ जाने वाले गुरु को अपने शिष्यों की इच्छानुसार व्यवहार करना पड़ता है। सच्चे गुरु द्वारा दिये जाने वाले ज्ञान के न होने के कारण उसे ऐसा करना पड़ता है।

प्रत्येक क्षेत्र की सीमा होती है। व्यापार–वाणिज्यों, हाट–बाजारों, अभिनय, उद्योग–धन्धों, पुलिस कर्मचारियों में, सर्वत्र धोखाधड़ी चल रही है। इसी प्रकार गुरु–क्षेत्र में भी कुछ ढोंगी गुरु हैं। फिर भी साधक को पाखंडी गुरुओं का कृतज्ञ होना चाहिये क्योंकि उनकी सही स्थिति जानने के बाद सद्गुरु की खोज होती है। साधक को पाखंडी गुरुओं की बुरी एवं विनाशात्मक गतिविधियाँ देखकर सद्गुरु

की कार्यप्रणाली का ज्ञान होता है।

कोई भी व्यक्ति परमेश्वर की सृष्टि से कुछ भी नष्ट नहीं कर सकता। यद्यपि परमेश्वर ने इस सृष्टि में अनन्त प्रकार की वस्तुओं की रचना की है, फिर भी उसने मनुष्य को उनमें भेद करने का विवेक भी प्रदान किया है। उसने काँटे, बाड़ और अन्य प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न की हैं; लेकिन साथ ही उसने हमें आँखें भी प्रदान की कि हम उनसे बचकर चलें।

इस बात का आश्चर्य है कि क्या गुरु भी झूठा हो सकता है ? लेकिन क्या हम कभी झूँठे शिष्य के बारे में नहीं सोचते ? शिष्य वस्तुतः क्या चाहता है ? अधिकतर शिष्य अपनी पसन्द का गुरु चाहते हैं वे गुरु को अपनी इच्छानुसार चलाना चाहते हैं। पहली बार अमेरिका आने पर मुझे पश्चात्य देशों के भक्तों को प्रभावित करने के लिये अपने कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करने को कहा गया। मैंने उत्तर दिया, "मैं अमेरिका विजय के इरादे से यहाँ नहीं आया हूँ। यदि यहाँ मेरी शिक्षाओं को आत्मसात् करने वाले दस साध क भी मुझे मिल गये तो इतना ही मेरे लिये काफी है। मैं यहाँ उसी प्रकार की शिक्षा प्रदान करूंगा जिस प्रकार की शिक्षा मेरे गुरुदेव से मुझे प्राप्त हुई है।"

पाखंडी शिष्य अपने अन्ध–ज्ञान एवं स्वार्थ के कारण स्वयं फँस जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनके फंसने का प्रश्न ही नहीं उठता। उन्हें ऐसा गुरु चाहिये जो बहुत सस्ता, शिस्त पर जोर न देने वाला तथा आत्मनिग्रह की बात न करता हो। साथ ही, तुरन्त उन्हें कुछ दिखा दें। बहुत लोग कहते हैं, "बाबा हमसे घुल–मिल नहीं जाते।" मैं प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा से घुलता–मिलता हूँ। अब बताओ, क्या मैं उनके खान–पान, दवादारू में शामिल होऊँ ? शिष्य चाहते हैं कि उनका गुरु भी उनकी तरह निरंकुश जीवन व्यतीत करे, उनके साथ पिये, साथ सिनेमा देखे, क्लब जाये, नशे का सेवन करे अथवा यदि वे कोई करना चाहें, जो भी कुछ करना चाहें, गुरु एक कमरे में अलग बन्द रहे। यह सब तभी होता है जब शिष्य तुरन्त कुछ प्राप्त करने की इच्छा से सस्ते गुरु की तलाश में होता है।

सद्गुरु वह है जो सृष्टि के प्रारम्भ से निर्मित गुरुपरम्परा से अखण्डित रूप से सम्बद्ध हो। आदिगुरु परशिव से इस परम्परा का प्रारम्भ हुआ और तत्पश्चात् नारायण, ब्रह्मा, वशिष्ठ, पाराशर, व्यासदेव, शुकदेव, गौड़पाद, गोविन्दाचार्य, शंकराचार्य, उनका शिष्य–समुदाय एवं अन्य महापुरुष आये। सृष्टि का संहारक होने के कारण परमगुरु परशिव को शिव अथवा रुद्र कहा गया है। इसका आशय यह नहीं कि वे हमारे घरों पर बम फेंकते हैं और हमारे परिवार नष्ट करते हैं। प्रत्येक वस्तु के बारे में हमारे अपने विशेष विचार होते हैं। हमने अपना एक अलग संसार बना रखा है। शिव हमारे इन असद् विचारों की सृष्टि को नष्ट करते हैं। एक महान विचारक ने उन्हें 'परमगुरु' के रूप में सम्बोधित करते हुए कहा, "आप गुरुओं के परमगुरु, योगियों के परमयोगी हैं। प्रत्येक वस्तु की मूल आधार स्वरूप शक्ति ही वह परमगुरु है। मस्तक के उर्ध्वभाग में स्थित

सहस्रार के त्रिकोण के मध्य में उसका वास है। गुरु भ्रूमध्य में 'हम्' तथा 'सोऽ' के रूप में स्थित रहता है। इसी कारण 'हम' तथा 'सोऽ' इन दोनों वर्णों का जप प्रत्येक श्वास के साथ निरन्तर होता रहता है।

द्वीपाद् द्वीपान्तरं देवि संचरेत्तद्यथा तथा।
यो दद्यात् स गुरुर्ज्ञानमभ्यासादिविवर्जितम्।।

'कुलार्णवतन्त्र' का कथन है कि जिस प्रकार एक दीपक से अनेक दीपक प्रज्वलित होते हैं, वैसे ही गुरु का ज्ञान शिष्य में प्रवाहित होता है। गुरु की शक्ति अज्ञान का विनाश कर हृदय में प्रकाश भरती है। पर्याप्त भोजन कर जैसे भूखा व्यक्ति तृप्त हो जाता है, उसी प्रकार शिष्य ध्यान द्वारा गुरु का ज्ञानामृत प्राप्त कर तृप्त एवं कृपार्थ हो जाता है। शिवसूत्र का कथन है; **ज्ञानमन्नम्** ज्ञान अन्न है। परशिव बोले–"हे पार्वती ! भाषण बाज गुरु अनन्त हैं; लेकिन अन्तरहृदय के परम तत्व को प्रकट करने वाले समर्थ गुरु दुर्लभ है।"

ज्ञान परमतत्व है, ज्ञान गुरु है, ज्ञान परमगुरु है। वही गुरु इस सृष्टि में द्रष्टा एवं दृश्यभाव से लीलामग्न है। ज्ञान के दोनों प्रकारोंमें वही स्थित है। यह ज्ञान सत्य, अनन्त एवं सर्वशक्तिमान् है। जिसमें यह शक्ति वास करे, वही सद्गुरु है। यही अनादि शक्ति सद्गुरु है न कि यह शरीर अथवा कोई व्यक्ति। एक गुरु इस शक्ति को अन्य गुरु में प्रेषित करता है शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता। दीक्षा–विधि के भी विभिन्न प्रकार हैं। शरीर–त्याग के समय गुरु एक व्यक्ति को पसन्द कर उसे अपनी सम्पूर्ण दिव्यशक्ति दे देता है। मेरे बाबा (भगवान श्रीनित्यानन्दजी अवधूत) एक दिन प्रातः नौ बजे महासमाधि लेना चाहते थे। उस दिन पूर्व रात्रि के नौ बजे उन्होंने मुझे बुलाया; अपनी हथेली से लेकर कुहनी तक सारी भुजा मेरे मुँह में प्रविष्ट कर दी और मुझे गले लगाया। उन्होंने अपना हाथ मेरे मुँह में डालकर उसे गले तक खिसका दिया और वहाँ जो कुछ रखना चाहा, रख दिया। इस प्रकार गुरुपरम्परा प्राप्त ज्ञान सुरक्षित रहता है। यही सद्गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान है। गुरु के चुनाव में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। सर्वप्रथम देखना यह है कि क्या गुरु शिष्यों के उपदेशानुसार चलता है ? अथवा शिष्य उसके सद्ज्ञान के पीछे चलते हैं ? याद रखो, सस्ती चीज का परिणाम सस्ता होता है।

सद्गुरु मंत्र को चेतन करता है। ऐसा मन्त्र महान शक्तिशाली होता है। वह मंत्र एवं तन्त्र का प्रत्येक रहस्य जानता है। उसे मंत्र एवं उसके लक्ष्य का पूर्वज्ञान होता है, वह मंत्र को स्वयं में अनुभूत किया होता है। यदि ऐसा नहीं तो वह सद्गुरु नहीं। श्वास का भीतर–बाहर आना–जाना लगा रहता है। रीढ़ प्राण का मूल आधार है। इसी मूलाधार में दिव्यशक्ति का वास है। गुरु उस दिव्यशक्ति कुण्डलिनी का जागरण कर शिष्य को तत्काल योग की अनुभूति कराता है।

गुरु आठ प्रकार के मंत्र एवं आठ प्रकार की दीक्षा–विधि का ज्ञाता होता है। उसे आठ बीजों–गुरुबीजम्, योगबीजम्, शक्तिबीजम्, रामबीजम्, कामबीजम्, शान्तिबीजम् तथा रक्षाबीजम् की जानकारी होती है। रक्षा का

अर्थ है—बचाव। गुरु द्वारा प्रदत्त बीजमन्त्र में रक्षा करने की पूर्ण शक्ति होनी चाहिये : जिससे स्वयं अपनी तथा अन्यों की किसी भी परिस्थिति में रक्षा की जा सके।

परशिव का कथन है—"गुरु उसे समझो जो मंत्र को चैतन्य कर उसे मेरा स्वरूप बना दे। ऐसा गुरु मुझमें पूर्णरूप से लीन है तथा उसे मेरा पूर्ण ज्ञान है।" ऐसे गुरु के प्रसन्न होने पर शिष्य कृपा प्राप्त करता है। एक महात्मा का कथन है :

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया। यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं तस्मै श्री गुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

"मैं उस गुरु के समक्ष प्रणत हूँ जो माया के कारण बाह्य रूप में दृश्यमान विश्व का इस प्रकार अन्तरहृदय में दर्शन कराता है। जैसे शीशे में किसी नगर का प्रतिबिम्ब अथवा निद्रावस्था में स्वप्न। गुरुकृपा प्राप्त शिष्य अनुभव करता है। यह अखिल विश्व उसी में समाहित है कि उन दक्षिणामूर्ति रूप शिव की गुरुमूर्ति को नमस्कार है।

इस विषय पर ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

"हे गुरुदेव ! आप स्पष्ट ज्ञान, ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान प्रदान करने में समर्थ हैं। आपकी कृपा से प्राप्त हुए बिना कौन ब्रह्म को जान सकता है ? आपकी कृपा से रहित व्यक्ति के लिये संसार केवल संसार है, लेकिन आपकी कृपा प्राप्त व्यक्ति के लिये संसार स्वर्ग है।

"आप ज्ञानरूपी कमल के विकसित स्वरूप हैं, परा–प्रकृति, शक्ति अथवा विशाल ब्रह्माण्ड की जननी कुण्डलिनी आपकी सूक्ष्म दासी है। वह आपकी प्रिय दासी है जिसके साथ आप सदा लीलामग्न रहते हैं। आप सबके लिये हैं और आपके लिये सब अपने हैं, इस भावना के उदित होने पर आप कष्टों से सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं। हे गुरुदेव ! आप प्रचण्ड प्रकाशमय सूर्य हैं। जिससे भौतिक जगत् का अन्धकार नष्ट होता है। जब तक अन्तर में सूर्योदय का प्रकाश नहीं उदय होगा, अन्तर का अन्धकार नष्ट नहीं हो सकता। आपकी शक्ति असीम है, अनन्त है।"

"हे गुरुदेव ! आपकी शक्ति असीम है।" ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं– "आप अपने अबोध शिष्यों की देखभाल करते हैं, उन्हें आत्मलीन कर तुरियावस्था तक पहुँचाते हैं और उस स्थिति से भ्रष्ट न होने के लिये वहाँ भी उनकी देखभाल करते हैं। आप सर्वोच्च देव हैं। मेरे अभिवादन स्वीकार करें। आप इस अखिल ब्रह्माण्ड के रक्षक तथा गुणों के भण्डार हैं।

आप सज्जनों के धन को सुरक्षित करने वाले चन्दन वृक्ष हैं। आप परमपूज्य देव हैं, क्योंकि पूजित होने पर आप भक्त के हृदय में स्वयं को प्रगट करते हैं अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जिस प्रकार चन्द्र चकोरपक्षी को प्रसन्न कर उसका मन शीतल करता है उसी प्रकार आप बुद्धिमान व्यक्तियों को प्रसन्न कर उनको शांति प्रदान करते हैं।

आप आत्मसाक्षात्कार के साम्राज्य के सर्वोच्च शासक हैं। आपकी कृपा, आपका शक्तिपात, मनुष्य को स्वयं पूर्णरूप से परिवर्तित कर देता है। आप वैदिक ज्ञान के मधुर सागर

है। हे सद्गुरु ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, क्योंकि आप भक्तों की पूजा के पात्र हैं। आप अपने भक्तों को अपने समान गुरु बना देते हैं। संसार रूपी गज को वश में करने के लिये आप अंकुश-स्वरूप हैं। आप भौतिक सत्तारूपी गज के मस्तक चूर्ण-विचूर्ण करने में समर्थ हैं ! हे सद्गुरु ! आप विश्व-रचना के आदि स्रोत हैं मैं बारम्बार आपको प्रणाम करता हूँ।"

"हे सम्राट ! हे महाराज ! आपकी कृपा ज्ञानमूर्ति गणेश है। अज्ञानी बालक गणेशजी की कृपा प्राप्त होते ही ज्ञान की प्रत्येक शाखा का अधिकारी हो जाता है।"

नरसी मेहता नाम के एक महान् भक्त थे जो जन्म से ही गूँगे थे। वे महान कवि बन गये। उनकी कविताएँ वेद तत्व को प्रतिपादित करती हैं : "गुरु के प्रवचन का तत्व समझने मात्र से सारे भावों का माधुर्य-सागर उमड़ पड़ता है। हे गुरु महाराज ! आपके मधुर प्रवचन की कृपा का स्वाद प्राप्त करने पर शिष्य बृहस्पति की स्पर्धा करने को तैयार हो जाता है।"

एक अन्य महान् संत कवि सूरदास का कथन है-"आपके चरण-कमलों की वन्दना करने से लँगड़ा व्यक्ति पर्वत-शिखर पर चढ़ सकता है। इसके अतिरिक्त, जिस किसी पर आपकी कृपादृष्टि एवं जिस किसी के मस्तक पर आपका कृपामय हस्त पड़ा चाहे वह कितना भी साधारण पुरुष क्यों न हो, शिव-समान हो जाता है। आपके कार्य की महिमा का मैं अपनी सीमित वाक्शक्ति से कैसे वर्णन करूँ ? सूर्य के प्रकाश की वृद्धि के लिये क्या कोई उसके शरीर पर लेप लगा सकता है ? फूलों से कल्पवृक्ष की सजावट का कोई कहाँ तक प्रयत्न करेगा ?

"हे गुरुदेव ! आप सबके आत्मस्वरूप हैं। आपकी कृपा सांसारिक व्यक्तियों के लिये महान औषधि है।"

गुरु अंतर-बाहर सर्वत्र विराजमान है। मेरे लिये सामने लटके चित्र में वैसा ही है जैसा गणेशपुरी में। वे सर्वव्यापी हैं। उन्होंने मुझे यह गद्दी दी जिस पर बैठकर मैं प्रत्येक विषय पर बोल सकता हूँ, यद्यपि मैंने दूसरी कक्षा भी पास नहीं की।

सन्त दादू के महान् शिष्य सुन्दरदास कहा करते थे-"बिना गुरु के ज्ञान नहीं, गुरु बिना ध्यान नहीं, गुरु-कृपा बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं। गुरु बिना हृदय में प्रेम नहीं। चाहे कोई कितना शिक्षित अथवा विद्वान क्यों न हो, उसका हृदय शुष्क ही रहेगा। गुरु बिना आत्म-निग्रह नहीं, शिस्त नहीं। गुरु से शिस्त सीखना होता है, गुरु बिना प्रसन्नता नहीं।" गुरु द्वारा हृदय को शीतलता एवं आत्मानन्द प्राप्त होता है। गुरु बिना ज्ञान की प्यास का अनुभव नहीं होता। गुरु के प्रेमामृत की प्राप्ति होने पर ही शिष्य की प्यास बुझती है। गुरु बुद्धि बिना अन्तर प्रकाश नहीं देख सकते, भ्रम एवं संशय की गुत्थियाँ नहीं खुलतीं। गुरु बिना अन्य कौन मुक्ति का मार्ग दिखा सकता है ? गुरु बिना मनुष्य दरिद्र है। सुन्दरदास कहते हैं-"यह बात लोग खुलेआम कहते हैं। वेदों का भी यही मत है।"

ऐसे गुरु का स्मरण करना आवश्यक है। केवल उनके स्मरण मात्र से उन जैसा बना जा सकता है। ऐसे गुरुओं में महान शक्ति

होती है। वे कहीं बाहर हैं—ऐसा मत सोचो। वह तुम्हारे अन्तर में हैं।

शैविज्म का कथन है : गुरुमूला: क्रिया: सर्वा:। गुरु सम्पूर्ण कर्मों का आधार है। इसी गुरु कृपा के कारण सारी यौगिक क्रियायें होती हैं। एक अन्य 'शिवसूत्र' में कहा गया है : 'गुरुरुपाय:'। "गुरु साधन है।" शंकर भगवान ने ब्रह्माजी से कहा :

नानामार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम्।
सिद्धिमार्गे लभते नान्यथा पद्मसम्भव।।

"हे ब्रह्मा, अन्य विभिन्न मार्गों से कैवल्यावस्था प्राप्त करना दुष्कर है। उसे प्राप्त करने का सरल उपाय सिद्धमार्ग का अनुसरण है।"

गुरु—कृपा प्राप्त होने पर अन्त: क्रियायें प्रारम्भ हो जाती हैं, गुरु के एक शब्दमात्र से मुक्ति का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, बाकी बातें यों ही हैं। गुरुगीता में कहा गया है,

यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
य एव सर्वसंप्राप्तिस्तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

"गुरु के स्मरणमात्र से ज्ञान स्वत: अन्तर से उद्भूत होता है। मनुष्य के अन्तर हृदय पर उसके विचारों का प्रभाव पड़ता है। उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।" सुन्दरदासजी कहते हैं :

जो मन नारि की ओर निहारत,
तौ मन होत है ताहि को रूपा।
जो मन काहु सुँ क्रोध करै पुनि,
तौ मन है तब ही तदरूपा।।
जो मन मायहि माया रटै नित,
तौ मन बूड़त माया के कूपा।
सुन्दर जो मन गुरु विचारत,
तौ मन होत हवै गुरु स्वरूपा।।

नारी के विषय में सोचने वाला मन नारी बन जाता है तथा नर के विषय में निरन्तर सोचने वाला मन नर बन जाता है। क्रोध में जलता मन एक दिन क्रोध के गर्त में गिर जाता है, माया के विचार में पड़ा मन माया के सागर में डूब जाता है।

सुन्दरदास कहते हैं—"श्रीगुरु एवं उनके उपदेशों के स्मरण में निरन्तर लीन मन एक दिन श्रीगुरु बन जाता है और तब मुक्ति, बच्चों का खिलौना अथवा साबुन के बुलबुले उड़ाने जैसा सरल बन जाता है। उनके स्मरणमात्र से अन्तरज्ञान स्वयं उद्भूत होता है, सर्व वस्तुओं की समाप्ति हो जाती है।"

बहुत दिनों से, अनेक स्थानों पर लोग मुझसे पूछते रहे—"शिष्य गुरु—कृपा कब प्राप्त करता है ?" मैं सदा कहता रहा—"ज्यों ही शिष्य अपनी पूर्ण कृपा गुरु को प्रदान कर देता है, गुरु—कृपा तुरन्त उसे प्राप्त हो जाती है।"

शास्त्रों का वचन है : "मन्त्रों, तीर्थों, महापुरुषों, देवों तथा गुरुओं से मनुष्य की भावना के अनुसार फल प्राप्त होते हैं।" तुम जितना ही श्रद्धालु बनोगे, तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम्हें फल—प्राप्ति होगी। जितने योग्य बनोगे, उतनी ही प्राप्ति होगी।

लोग कहते रहते हैं—"ध्यान शिविर में भाग लेने पर भी मुझे कुछ न हुआ, प्रवचन सुने, किन्तु शक्ति जागरण नहीं हुई।" कम से कम एक क्षण के लिये अपना हृदय पूर्णरूप से गुरुदेव को समर्पित कर दो, फिर देखो, क्या होता है। प्रसिद्ध महिला—सन्त मीराबाई ने

कहा—"लोगों, मैंने प्रभु को खरीद लिया। मैंने उन्हें तराजू पर तोल लिया है, एक पलड़े पर मैं थी, दूसरे पर प्रभु। मैंने उन्हें स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर दिया। ऐसा करके मैंने उन्हें पूरा खरीद लिया।"

गुरु में गुरुत्व होना आवश्यक है। गुरु की गुरुपरम्परा अखण्ड होनी चाहिये। उन्हें ईश–कृपा का आनन्द प्राप्त हो चुका होना चाहिये। उन्हें योग्य व्यक्ति को शिष्य बनाने का लोभ होना चाहिये। धनसंग्रह के लिये वे शिष्य लोभी न हों। गुरु की शक्ति परमगुरु है। ऐसा गुरु "अतिमान सद्गुरु" कहलाता है। उसका अपना विशिष्ट स्थान होता है जिसे सिद्धलोक कहते हैं। उसकी परम्परा पूर्ण एवं अविकल, अखण्ड होती है। उसमें कृपा–प्रदान की शक्ति होती है। ऐसे सद्गुरु के प्रति अपना हृदय समर्पित करने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये।

इस संसार में रहो, परिवार के साथ रहो, अपना काम अपना व्यापार करो, अपने भौतिक जीवन के व्यवहार चलाते रहो। केवल अपना हृदय सद्गुरु को समर्पित कर दो। तुम्हें पता होना चाहिये मैं एक महान सम्पन्न सद्गुरु का शिष्य हूँ मुझे तुम्हारे पैसे की भूख नहीं, मुझे केवल अपना हृदय दो। मैंने बहुत काफी देखा–सुना है, बहुत कुछ किया है। प्रत्येक वस्तु से पूर्णतः संतुष्ट हूँ। जन्म से ही, मेरे आगे–पीछे सम्पत्ति घूमती–फिरती रही हैं इसलिये मुझे, कुछ देने वाले शिष्य की आवश्यकता नहीं। मुझे ऐसे शिष्य की आवश्यकता है जो मेरे हाथ द्वारा दी गयी वस्तु को अपने हृदय में आत्मसात् कर ले।

अन्त में, मैं तुम्हें तुकाराम महाराज का एक पद सुनाऊँगा :

गुरुचरणी ठेविता भाव। आपे आप भेटे देव।।
म्हणुनी गुरुसी भजावे। स्वध्यानासी आणावे।।
देव गुरुपासी आहे। वारंवार सांगू काये।।
तुका म्हणे गुरुभजनी। देव भेटे जनीं वनीं।।

यदि तुम्हें–गुरु–चरणों में श्रद्धा है, गुरु–चरणों में गहरी भावना है, यदि तुम गुरु की स्थिति को आत्मसात् कर सकते हो तो फिर तुम्हें प्रभु को ढूँढने की आवश्यकता नहीं : प्रभु तुम्हें ढूँढता फिरेगा। इसलिये गुरुध्यान करो, उन्हें अपने ध्यान में लाओ। ऐसा करने पर तुम गुरु की महान स्थिति को प्राप्त कर लोगे और स्वयं गुरु बन जाओगे। गुरु को तुम्हारे ध्यान की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे दिव्यात्मा है। ध्यान द्वारा तुम उनके सारतत्व की अनुभूति करते हो।

सन्त तुकाराम महाराज ने कहा—"प्रभु, गुरु के सान्निध्य में है। यह बात मैं तुमसे कितनी बार कहूँ ? सतत गुरु–स्मरण एवं उनकी शिक्षाओं को आत्मसात् करने पर, चाहे नगर में रहो या वन में, प्रभु को प्राप्त कर लोगे।" प्रभु को भीड़ में भी प्राप्त कर सकते हो, एकान्त में भी। जहाँ कहीं रहो, प्रभु के दर्शन होते रहेंगे। इसलिये निरन्तर गुरुध्यान में मग्न रहो। अपने ध्यान में उन्हें लाओ। गुरुचरणों में श्रद्धा होने पर परमात्मा तत्काल प्राप्त हो जाता है। ❊ ❊ ❊

सलाह

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

तेरी श्वांस–श्वांस पर सद्गुरु के मन्तर की घूमे माला।
तब खुले मोक्ष का ताला।। टेक।।

गुरुमन्त्र की झाड़ू लेकर शबरी करी सफाई।
किया योग्य स्नान हेतु सर, हटी कीच और काई।।
तिलक बने माथे का वो जो लगा दाग हो काला।।१।।
तब खुले मोक्ष का ताला।।

गुरु मंत्र के बल पर मीरा बनी मोक्ष–अधिकारी।
सुमन–माल में बदल गई थी, भेजी सर्प–पिटारी।।
शीतल शर्बत जैसा लागे विषम हलाहल प्याला।।२।।
तब खुले मोक्ष का ताला।।

रामरती, गणिका दोनों ही पाप–पंक को धोके।
सजा रहीं बैकुण्ठ साथियों ! अमर देवियाँ होके।।
को करे तरक्की इतनी बदल योनि का फाला।।३।।
तब खुले मोक्ष का ताला।।

है चाहत मेरी श्वाँसों में गुरूमंत्र रम जाये।
सोटा और लंगोटा लेकर बन हिमगिरि बस जाये।।
या गुरु स्वयम् छुड़ायें मुझसे हठकर जग–जंजाला।।४।।
तब खुले मोक्ष का ताला।।

"रोम-रोम बसियो हे राम प्रभु मेरे"

कु० रुक्मिणी वर्मा

जप-तप, संयम-साधना, सेवा, निज अर्पण।
उस साधक को ही मिले, प्रभु रामलाल चरणन।।

प्रभु रामलाल साथ, सरल-अमल गात, चरणी जो दिये माथ वही रह पाये हैं।
सेवा में, साधना में, मन से आराधना में, नियति की यातना में तप सह पाये हैं।।
तन की भी धारें शुद्धि, मान को भी मारे बुद्धि, अहम्, नहीं धारे सिद्धि, मृदु कह पाये हैं।
श्वासों के तार जोड़े, विषयों से मुख मोड़े, चरणों में चित्त जोड़े, नत रह पाये हैं।।

मेरे मन की साध भी, रहूँ भक्ति में लीन।
अन्तर जल है मल भरा, ता से हूँ मैं दीन।।

मैं भी प्रभु रहूँ संग, प्रेम का ही धारूँ रंग, सोच-सोच पर मैं तो दंग रह जाती हूँ।
दृष्टि जो निज लाऊँ, मन को मलिन पाऊँ, देख-देख घबराऊँ, चैन नहीं पाती हूँ।।
श्रद्धा है पास ना, होती ना उपासना, मन में भी मैं तो दुर्वासना ही पाती हूँ।
तन के लगे हैं रोग, मन में भरे हैं भोग, ध्यान में भी मैं तो बस ढोंग ही रचाती हूँ।।

चंचल मन की शान से, लगा हाथ अभिमान।
ताहि सफलता ना मिली, यतन किया हर आन।।

मन की चपलता, देती ना सफलता, अहम् नहीं गलता, बार-बार आता है।
नियमों में ढालना, वचनों का पालना, आदत में डालना, ये तो मन चाहता है।।
नित्य यतन है, फिर भी पतन है, भाग्य रतन है जो, साथ नहीं देता है।
जीवन का हर पल, काल बलि जाये छल, आज नहीं कल में, सब बीत जाता है।।

प्रभु तुम्हारे वास को, कर न सकी दिल साफ।
हार कर शरणी पड़ी, अवगुण कर दो माफ।।

अन्त में हारकर, आयी हूँ विचार कर, प्रभु जी ने पार कर दिये लाखों जग में।
कृपा की कोर देते, हाथों में डोर लेते, चरणों में ठोर देते, गिरे जो भी मग में।।
पर मैं तो कृपण, आता ना समर्पण, क्या करूँ अर्पण, लागूँ जब पग में।
हिय ना सन्तोष, मेरे मन में है दोष, सोच-सोच अफसोस, है दोष रग-रग में।।

महती कृपा आपकी, लेगी मुझे संभाल।
लायक बन जाऊँ आपके, दूँ चरणों में माल।।

डालो आके फेरा, मेरी कुटिया में डेरा, प्रभु छाँट दो अँधेरा, मेरे अन्तर में आइये।
अन्तःपुर के चोर सब, मार मुकाओ अब, करो ना गजब कुछ, दया तो दिखाइये।।
तन की कुटीर कर, मन को फकीर कर, हाथों की लकीर में योग लिख जाइये।
बस तुम लायक, बनूँ मेरे नायक, होके सहायक अब मुझे अपनाइये।।

रोम-रोम मेरा प्रभु, हो तेरा आवास।
पपीहा बन रटना करूँ, यही विनय है खास।।

पलकों की ढाल में, पुतली की थाल में, प्रभु रामलाल जी लाओ अब डेरे।
मन के अमन में, भाव के रमन में, दिल के चमन में लेट जाओ मेरे।।
रक्त संचार में, मम-मूलाधार में, सहस्रदलाकार में बैठ जाओ मेरे।
ऐसे निवासियों, कभी ना निकसियो, 'रोम-रोम बसियों' हे राम प्रभु मेरे।।

* * *

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः।।

(3/2/1)

'वह निष्काम-भाव वाला पुरुष इस परम विशुद्ध (प्रकाशमान) ब्रह्मधाम को जान लेता है, जिसमें सम्पूर्ण जगत् स्थित हुआ प्रतीत होता है; जो भी कोई निष्काम साधक परम पुरुष की उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान् रजोवीर्यमय इस जगत् को अतिक्रमण कर जाते हैं।'

मनो दुर्निग्रहं चलम्

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

चैत्र शुक्ल पक्ष से नववर्ष का आरम्भ होता है। विक्रम सम्वत् २०५९ इस चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से २०६० हो जायेगा। इसी चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी को भगवान राम इस धराधाम में लीला विग्रह धारण कर आये थे और मनुष्य जीवन में आदर्शों की एक श्रृंखला स्थापित कर मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये तथा जन–जन के श्रद्धेय, आराध्य एवं इष्ट देव के रूप में प्रतिष्ठित हुए। रामनवमी एक अत्यन्त प्रथित तिथि है और त्रेता युग में दुष्टदमन व रावण सदृश महाप्रतापी के भी हनन हेतु उनका संहनन (शरीर) इस धराधाम का अलंकरण रहा।

महापुरुषों व सिद्धयोगियों के स्वभाव व उनकी चेष्टाओं को कोई नहीं जान सकता जब तक वे स्वयं निज श्री मुख से उस तथ्य को उद्‌घाटित या प्रकाशित न करें। हमारे सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के परमाराध्य और हमारे आपके दादागुरु प्रभु श्री रामलाल जी की प्राकट्य तिथि भी वही है जो भगवान श्री राम की है। चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को ही लगभग ११५ वर्ष पूर्व अमृतसर की पावन व पूतनगरी में उनका अवतरण हुआ था। उनके जनक व जननी ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान तथा मूर्धन्य ज्योतिर्विद् थे। उन्होंने अपने इस तेजस्वी पुत्र की उत्पत्ति पर ही गणना द्वारा अनुमित कर लिया कि ये तो विलक्षण व्यक्तित्व है और इनका कृतित्व परम विलक्षण ही होगा। हुआ भी वही। उनके चरित्र–सुधारस का हम सब अपने श्री सद्‌गुरुदेव के मुखारविन्द से प्रसाद एवं आस्वाद ग्रहण कर चुके हैं।

मेरा परम सौभाग्य का वह दिन था। लखनऊ में महाराज श्री का आगमन उनके प्रतिवर्ष के माघ मासीय प्रयाग प्रवास के पश्चात् लगभग एक सप्ताह श्री मोहनलालजी अग्रवाल के निवास स्थान पर ब्रह्मचारी श्री ओम प्रकाशजी पालीवाल के संरक्षकत्व में हुआ करता था। मैं उन दिनों उत्तर प्रदेश सचिवालय में सेवारत था और मेरा निवास सचिवालय की लखनऊ कॉलोनी में बी–१४ था। मेरे अनुरोध पर महाराज श्री ने मेरे निवास को अपने पावन चरणों से पवित्र कर मुझे कृतार्थ किया था। सुश्री उमाजी भी तब उनके संग थीं। उस समय प्रभु जी ने मुझसे कहा था कि 'लला मुझे'

यस्य प्रसादात् पतिताः सुपावनाः भवन्ति संसार सुतारणाः शिवाः।
योगी श्वराणां परमेश्वरं हरिं, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये'।

यह श्लोक अतिप्रिय है तुम भी इसी छन्द पर आधारित काव्यरचना किया करो। आज मुझे उनके श्री मुख से उच्चरित वे शब्द न जाने उनकी ही प्रेरणा से भावना रूप में उदित हुए और मैंने मन में धारण किया मैं 'श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये' इस शीर्षक से एकादश श्लोकों की रचना कर 'सिद्धयोग पत्रिका' में उनके ही जन्म दिवस के उपलक्ष्य में अवश्य भेजूँगा। एक आध घण्टे के अन्तराल में उनका पावन चरण स्मरण होते ही ये लिपिबद्ध हो गये। उनकी महिमा का गुणगान कौन कर सकता है परन्तु यदि उनकी ही प्रेरणा वश भाव–प्रकट हों तो वे स्वयं जानें। यही निवेदन करने के पश्चात् अब मैं तथोक्त रचना को प्रस्तुत कर रहा हूँ सिद्धयोग के सिद्ध व सुधी पाठकवृन्द महाप्रभु श्री के गुणानुवाद का रसास्वद करेंगे, यही मेरे आह्लाद का विषय रहेगा। इतिशम्।

(१) स एव सर्वत्र कणे कणे सः,
अतीत्य कालं हृत्स्पन्दने सः।
चैतन्यरुपेण हिश्वास कारकः,
साक्षी समेषां स विराजतेतराम्।।

भावार्थ—वह (परमात्मा) सर्वत्र विद्यमान है। वह कण–कण में विराजमान है। काल का अतिक्रमण करते हुए वह हृदय की धड़कन में उपस्थित है। वही चेतनरूप प्राण बनकर श्वास ले रहा है। वही सबका साक्षी बना हुआ सर्वत्र विराजमान है।

(२) आत्मा शरीरेषु प्रविश्य नूनं, सर्वेन्द्रियाणां मनसश्च बुद्धेः
प्रकाशकोऽस्ति न कर्ता स्वयंसः, बुभुज्जते कर्मफलानि भोगः।।

भावार्थ—उसी परमात्मा का अंश आत्मा विभिन्न शरीरों में प्रवेश करता है। वह स्वयं तो अकर्ता बना रहता है। परन्तु वह समस्त इन्द्रियाँ, (पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) मन और बुद्धि को चेतनता प्रदान कर प्रकाशित करता रहता है। यह शरीर निमित्त रूप से ही अपने किये हुए कर्मफलों का बार–बार भोग करता रहता है।

(३) आश्चर्यमेतन्निखिलापिसृष्टिः, गुणेषु त्रिष्वेव विवर्ततेतराम्।
मूढोजनश्चिन्तयते निरन्तरम्, करोम्यहं मत्कृतमेव सर्वम्।।

भावार्थ—यह कितना बड़ा आश्चर्य है कि यह सारी सृष्टि तीन गुणों (सत्व, रजस् तमस्) करता है कि सब कुछ मैं ही कर रहा हूँ और मेरे द्वारा ही सब कार्य सम्पन्न हो रहे हैं।

(४) अहंकृतः सः स्वशरीर बुद्धिः, अज्ञानतमसा परिलुप्त दृष्टिः।
क्रियाफलत्वं त्रिगुणश्रितं, स्वस्मिन्दधाति मत्कृतमेव सकलम्।।

भावार्थ—इस प्रकार अहंकार से युक्त हुआ वह मनुष्य अपने में शरीर–बुद्धि रखते हुए अज्ञान रूपी अन्धकार से अपनी ज्ञान दृष्टि को खो बैठता है। कार्यकलाप के जो परिणाम उन तीनों ही गुणों के आधार पर हुए जा रहे हैं। उन सबमें वह यह कल्पना किये रहता है कि यह सब मैंने ही किया है।

(५) यदा यदा तत्कृतमन्यथ स्यात्, अभीप्सितं नैव च सिद्धयति तथा।
नैराश्यमाप्नोति च शोकमोहौ, परिवृतीतं परिसीदतश्चे।।

भावार्थ—जब–जब मनुष्य के द्वारा किये गये कार्य आशा के विपरीत अन्यथा परिणाम प्रस्तुत करते हैं तथा मनुष्य का सोचा हुआ कार्य सिद्ध नहीं हुआ करता है तब उसे निराशा घेर लेती है और शोक और मोह इतना बढ़ जाते हैं कि उसके कारण वह अत्यन्त कष्ट और क्लेश से पीड़ित हो जाया करता है।

(६) एवं विधैरन्य प्रकार कैश्च, क्लेशैश्च दुःखैः परिदूयमानः।
नरो निजैः पुण्यसमुच्चयैस्तदा, शरणं समाप्नोति कंचिच्च सद्गुरोः।

भावार्थ—इसी सदृश अन्य प्रकार के क्लेशों और दुःखों से पीड़ित रहते हुए मनुष्य अपने महान् पुण्यों के संचित होने पर कभी श्री सद्गुरु की चरण–शरण को प्राप्त कर लेता है।

(७) श्री सद्गुरु पात्रमवेक्ष्यतावत्, दीक्षां ददाति तत्तत्कर्मानुसारि।
अज्ञान तमसावृतमेव ज्ञानं, प्रकाशयत्याशु कृपां विधाय।।

भावार्थ—श्री सद्गुरु भी पात्रता का ध्यान रखते हुए उसके कर्मों पर दृष्टिपात कर तदनुसार ही दीक्षा प्रदान कर देते हैं। उसके अज्ञानरूपी अन्धकार से ढके हुए ज्ञान को ही कृपा करके उद्घाटित कर दिया करते हैं।

(८) मंस्यामहे नैव कथं तदावयं, धन्यं जनुर्मर्त्यलोकेऽपिनूनम्।
श्री सद्गुरोर्भागवती कृपा च, संवर्त्ततेवर्द्धते नित्यमेव।।

भावार्थ—ऐसे समय में इस मृत्युलोक में रहते हुए भी अपने इस जीवन को धन्य क्यों नहीं मानेंगे जबकि श्री सद्गुरु तथा भगवत्कृपा दोनों ही विद्यमान हों और नित्य ही वृद्धि को प्राप्त होती रहती हों।

(९) नैषा कृपा यन्नरदेहमाप्तं, शुभे कुले संस्थितिरेव लब्धा।
अंगान्यविकलानि मतिश्च निर्मला, यदकेनदत्ता, च दत्तानि तानि।।

भावार्थ—क्या यह भगवत्कृपा नहीं है कि हमें यह मनुष्य देह प्राप्त हुआ है। उस पर शुभ व पवित्र कुल में जन्म लेने का लाभ मिला। समस्त अंग प्रत्यंग सम्पूर्ण मिले। बुद्धि भी निर्मल मिली। आप ही बतलाइये, यह किसका दिया हुआ है, किसने दिया है ?

(१०) पुनश्च तस्मिन्नरदेहकेऽस्मिन्, सान्निध्य-सामीप्य मथापि सद्गुरोः।
सम्प्राप्य चेत्माबते योऽपि कश्चित्, किञ्चिन्न लब्धं धिक्तस्य जीवितम्।।

भावार्थ—इसके बाद फिर इस मनुष्य देह में भी सद्गुरु का सान्निध्य तथा सामीप्य प्राप्त रहा हो और उस पर भी कोई यह कहे कि मुझे जीवन में कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ है, उस जीवन को धिक्कार है।

(११) अरे मनो मूढ़ विचिन्तय त्वं, किं शाश्वती शान्तिरथापिक्वाचित्।
लब्धात्वया धावताऽधावधिस्तु, विषयान् समस्तान् परिसेव्यमानान्।।

भावार्थ—अरे मूढ़ मन ! तुम जरा सोचो कि गुरुदेव के सान्निध्य से पूर्व कभी हमें निरन्तर विद्यमान रहने वाली शाश्वती शान्ति का आभास हुआ था। आज तक हम समस्त विषयों के पीछे उनके भोग की लालसा में दौड़ते रहे। हमने क्या कुछ प्राप्त किया था।

(१२) यदस्मदीयं निजकर्मनिर्धूतं, तदेव दिष्ट्या परिप्रापणीयम्।
यत्प्रापणीयं खलु आत्मश्रेयसे, यत्नेन तत्तद् सुधिया विधेयम्।।

भावार्थ—याद रखो, जो हमारे संचित कर्मवशात हमें ही मिलने वाला है वही हमें नियतिवशात् प्राप्त होकर रहेगा। अतः ध्यान उस पर देना उचित होता है कि हमारा प्राप्तव्य वह रहे जो आत्म—कल्याणकारी हो और उसी के प्रति बुद्धिमान् मनुष्य को प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(१३) **अहो ! कृपाऽस्ति महतीह सद्गुरोः यद्दत्तमन्त्रो निजरूपमाधात्।**
योगाय क्षेमाय बभूव प्रतिभूः, करणीयमस्मत्करणी यमेव।।

भावार्थ—वाह ! हमारे सद्गुरुदेव की कितनी महान कृपा है कि उन्होंने हमें दिये गये मन्त्र में अपना स्वरूप ही दे दिया है। उसके पश्चात भी वे उस मन्त्र के जापक के योग और क्षेम के लिये प्रतिभू (जमानती) बने हुए हैं। अतः हमें इस मन्त्र का जाप अवश्य ही करना चाहिये। और अनवरत करते रहना चाहिये।

(१४) **कुतोऽस्मदीया नियमानुवर्तिता, कुतोऽस्त्यनन्या परमा च निष्ठा।**
पात्रं गृहीत्वा च्यवितं च तावत्, चेष्टामहे पूरयेत् तूर्णमेव।।

भावार्थ—पर एक बात यह भी है कि हम उन श्री सद्गुरुदेव के उपदेशानुसार नियमानुवर्तिता को कहाँ तक निभा रहे हैं। हमारी उनके प्रति अनन्य निष्ठा और परम श्रद्धा है क्या ! हम टूटा हुआ पात्र लेकर यही सोचा व चेष्टा करते रहते हैं कि शीघ्र ही यह भर जाये।

(१५) **जानीमहे किं करणी यमस्ति, वयं विद्महे चाचरणीयमस्ति किम्।**
वाञ्छामहे सर्वविधन्तु श्रेयः, कुर्वामहे किं गुरुणोपदिष्टम्।।

भावार्थ—हम सब जानते हैं कि हमें क्या करना है। हमें यह भी पता है कि क्या—क्या आचरण हमें करना चाहिये। हम चाहते तो हैं कि सर्वविध कल्याण होता रहे। पर क्या हम श्री सद्गुरुदेव द्वारा उपदिष्ट वह सब कुछ कर रहे हैं, जिसका हमें बार—बार उनके श्री मुख द्वारा उपदेश दिया जाता रहा है।

* * *

(१) **मम मनो जहि चंचलतां सखे, विरम तावत् चिन्तय त्वं स्वयम्।**
विषयभोग प्रसक्तवता त्वया, सुचिरमप्युपलब्धमथापि किम्।।

हिन्दी—मेरे मन, मेरे मित्र, चंचलता को छोड़ दे। थोड़ा रुक और तू ही सोच कि तूने विषयों के भोगों में बहुल काल तक आसक्त रहकर, अब तक बता क्या हासिल किया है।

(२) **शरणतां व्रजतो गुरुचरणयोः, श्रुतवतस्तव सद्वचनं गुरोः।**
तदनुसारि कदाऽचरितं त्वया, कथयरे मम मूढमते मनः।।

हिन्दी—गुरुचरणों की शरण ग्रहण कर और उनके सद्वचन सुनकर के बता रे मूढ़मति—मन, उनके द्वारा प्रदत्त आदेशों अथवा उपदेशों का तूने पालन किया है क्या ?

(३) **अभवत्तव तृप्तिः पूर्णतः, न हि कदाप्यमृणोम् न च ज्ञानवान्।**
त्वमपि वेत्सिन् भोगप्रसक्तितो, मिलति शान्तिरथापि विरामता।।

हिन्दी–रे मन ! न मैंने सुना है और न ही मैंने इस बात को जाना कि तुम्हारी इन विषयभोगों से पूर्णतया कभी तृप्ति हो गई है। तुम भी इस सत्य को जानते हो कि भोगों में आसक्त रहकर न कभी शान्ति मिलती है और न ही चैन या विश्राम।

(४) **मनुज जन्म समेति नरः कदा, त्वमपि वेत्सि तथापि प्रमादतः।**
जपसि मन्त्रमपि वद किं सखे, परमया कृपया गुरुणोदितम्।।

हिन्दी–तू भी यह जानता है कि मनुज जन्म कब प्राप्त हुआ करता है तथापि श्री गुरुदेव द्वारा बड़ी कृपा करके अपने श्री मुख से दिये गये गुरुमन्त्र का प्रमादवश जाप नहीं करता है। बड़ा आश्चर्य है।

(५) **वद सखे ! कृपया परया गुरोः, चरणयोः शरणं व्रजतापि वा।**
स्वकरणं चरितं यदि पूर्ववत्, किमधिकं बत नो तव दुर्भगम।।

हिन्दी–मेरे मित्र, यह बता कि गुरुदेव की महती कृपा के द्वारा उनके शरणापन्न हुए पर भी यदि तूने अपनी करनी पहले जैसी बनाये रखी तो इससे बड़ा दुर्भाग्य भी कोई हो सकता है।

(६) **भगवता गदिताऽस्ति मुहुर्मुहुः स्ववचने जगदस्ति विनश्वरः।**
न हि सुखं जगतीह विराजते, परमिदं मनसा परिभाव्यते।।

हिन्दी–बारम्बार भगवान् श्री कृष्ण द्वारा आप स्वयं स्ववचनों में बताया गया है कि यह जगत् नाशवान् है। इस दुःखालय मर्त्यलोक में कहीं सुख है नहीं। पर इसमें सुखमय अवधारणा अपने ही मन की कल्पना द्वारा कर ली जाती है।

(७) **सुखमिदं परमदश्च दुःखदं, सकलमेव मनस्तव भावनम्।**
यदि भवेत् सुखमत्र च तत्र वा, सकलजीवगणाः सुखिनोऽपिस्युः।।

हिन्दी–इसमें सुख है और उसमें दुःख है, हे मन, यह सारी तेरी ही कोरी कल्पना है। यहाँ या वहाँ कहीं सुख होता तो जितना भी सारा जीवन समूह है वह सबका सब सुखी हो गया होता।

(८) **प्रियमिदं यदि मे तन्नहि सुप्रियम्, भवति कस्य परस्यचनो खलु।**
अत इदं भवतीह सुनिश्चितम्, मम मनो ! सकलं तव कल्कनम्।।

हिन्दी–यदि मुझे अमुक वस्तु प्यारी लगती है तो दूसरे किसी अन्य व्यक्ति को वही वस्तु अप्रिय हुआ करती है। इसलिये यह स्वयं–सिद्ध हो जाता है हे मन ! यह सब कुछ तेरी स्वयं की ही कल्पना है।

(९) **मम मनो कुरु तत् यच्छ्रेयसे, मम भवेत् सुखशान्ति प्रदायकः।**
कुरु तदेव भवेन्मम चिन्तनम्, चरणयोररविन्दरुचोर्गुरोः।।

हिन्दी—हे मेरे मन, तुम वही करो जो मेरे निमित्त सुख और शान्ति को देने वाला हो। और तुम ऐसा कुछ करो कि मेरे मन का चिन्तन कमल कान्ति वाले गुरुचरणों में ही लगा रहे।

(१०) **भगवताऽपि कृतं बहुधात्वयि, मनसि साग्रहमेव निरुपणम्।**
कुरु मनो मन्मित्र मिदं च तत्, मयि मनश्च समादध इतिवचः।।

हिन्दी—भगवान श्रीकृष्ण ने भी श्री मद्‌भगवद्‌गीता में तुम्हारे लिए ही आग्रह पूर्वक बहुत बार तुम्हारी ओर ही संकेत करके निरूपित किया है, मन्मना भव, मय्येव मन आधत्स्व, इत्यादि श्लोकों द्वारा वचन प्रस्तुत किये हैं।

(११) **तव चलत्वमपि भगवतेरितम्, बहुबलं, च दृढं गुणतश्च त्वम्।**
भवसि वश्यमतीव प्रयत्नतः, जयसित्व जगदप्यखिलं ध्वतः।।

हिन्दी—तुम्हारी चंचलता के प्रति भी भगवान् ने स्वयं कहा है, तुम महाबलवान् हो, पक्का इरादा कर लो तो तुम सब कुछ कर सकते हो, ये तुम्हारे गुण हैं। परन्तु तुम आते हो बश में अत्यन्त प्रयत्नों के बाद और यदि तुम वास्तव में नियन्त्रित हो गये तो सारा विश्व तुम जीत सकते हो इसमें कोई संशय नहीं है।

(१२) **श्रुतिरिहास्ति मनस्तव श्रेष्ठताम्, प्रमनुते तव चेत्तु समीहनम्।**
तव जवं गृणते सकलाधिकं, गणयतीति विचित्रमत्र किम्।।

हिन्दी—श्रुति ने भी तुम्हारी स्थिति में तुम्हारी श्रेष्ठता को ही सिद्ध किया है। तुम्हारी गति को सर्वाधिक माना है और ऐसा मानने में कोई आश्चर्य नहीं। तुम ऐसे ही हो।

(१३) **मम मनो भव मदीय चिरं सखा, कुरु मदीय सुचेष्टितमेव हि।**
वस सदेन्द्रिय वर्त्मसु स्वेच्छया, विहर नो तर तान् विषयान् सदा।।

हिन्दी—हे मन ! तुम मेरे चिरसखा बन जाओ और ऐसी चेष्टायें करो कि तुम इन्द्रियों के अधिष्ठाता तो बने रहो पर उनमें ही रमण न करने लग जाओ, उन विषयों से ऊपर उठ उनसे मुक्त रहो।

(१४) **विरम तावत् चिन्तय मम मनो, किमपि सारमसारयतीह नो।**
भवति नैव कदा भविताऽथवा, समयमेव विनंक्ष्यसित्वं वृथा।।

मेरे मन तुम जरा ठहरकर सोचो। क्या कभी कोई असार वस्तु सारवान् हुई है ? तुम इन क्षणिक और क्षणभंगुर भोगों में लिप्त रहे केवल संयम को नष्ट ही करोगे और कुछ नहीं।

(१५) **प्रथथ मार्गमतीव शुभावहं, जप निरन्तर मव्ययमक्षरम्।**
गुरुमुखान्नु निस्सृतममृतम्, कुरुजपं "सोऽहं-हंस अहर्निशम्।।

हिन्दी—मेरे मन, इसलिये जो शुभ एवं कल्याणकारी मार्ग हो, उसी की ओर अग्रसर हो। गुरुमुख से जो अव्यय, अक्षर तथा अमृत स्वयं निस्सृत हुआ है 'सोऽहं–हंसः' इसी का तुम दिन–रात जाप करते रहो। यही हमारे सब के लिये अभ्युदय और निःश्रेयस् का सुन्दर मार्ग है।

* * *

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय झांसी

जहाँ बही गुरुदेव-कृपाओं की अजस्र धारा

प्रेषक—कृष्णकान्त झा, झाँसी

सन् १९७७ के सितम्बर माह में सत्यगुरु देव भगवान् योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणा कृपा से उन्हीं प्रभु की पावन उपस्थिति में चार दिवसीय प्रथम बुंदेल खण्ड संगीत सम्मेलन का शुभारम्भ हुआ जिसमें कलकत्ता, श्री लंका, बम्बई, वाराणसी, इलाहाबाद, अजमेर, ग्वालियर, आगरा, जयपुर, मैहर, पूना आदि स्थानों से लगभग ३५ अखिल भारतीय स्तर के गायन–वादन–नृत्य के मूर्धन्य कलाकारों ने भाग लेकर सत्यगुरुदेव भगवान के चरणों में अपनी कला प्रस्तुत कर अपनी साधना को धन्य किया। यह कार्यक्रम स्थानीय श्री लक्ष्मी व्यायाम मन्दिर झाँसी के विशाल जैमनेशियम हाल में आयोजित था। जिसके अन्दर लगभग ७००० दर्शक श्रोतागण एक ओर संगीत का आनन्द ले रहे थे तो दूसरी ओर परम करुणा–निधान सत्यगुरु देव भगवान जो मंच के एक ओर सुन्दर आसन पर विराजमान थे के मनोहारी स्वरूप के दर्शन कर अपने जीवन को सफल बना रहे थे। इन्हीं कलाकारों में से एक श्री पन्नालाल जैन जो मैहर घराने के विख्यात सितार वादक हैं भी आए हुए थे। कार्यक्रम के दूसरे दिन रात्रि में लगभग ११.०० बजे श्री पन्नालाल जैन का सितार वादन चल रहा था कि अचानक २५ फीट ऊपर टंगा हुआ लगभग ४० किलोग्राम का एक विद्युत उपकरण (झाड) जो चीनी मिट्टी का बना हुआ था। अचानक श्री जैन के सिर के ऊपर टूटकर गिर पड़ा श्री जैन घबड़ा गए श्रोताओं/दर्शकों में भी हड़कम्प मच गया। किन्तु घोर आश्चर्य कि वह भारी उपकरण जैन साहब के सिर से टकराकर बारीक धूल में परिवर्तित हो गया और उन्हें मामूली सी खरोंच भी नहीं आई। तभी सभी लोगों की दृष्टि सद्गुरुदेव भगवान् की ओर गई तो देखा कि प्रभु नेत्र बंद किए गम्भीर मुद्रा में विराजमान हैं। पन्नालाल जैन उठकर दौड़ लगाकर श्री प्रभुजी के चरणों में गिर कर लोटने लगे। प्रभु ने उन्हें हृदय से लगा लिया। बार–बार सिर पर हाथ फेर कर अभय दान दिया और कहा कि लल्ला प्रभुजी इसी प्रकार अपने बच्चों की रक्षा किया करते हैं।

इस घटना के लगभग आठ दिन पश्चात जब कि कार्यक्रम समाप्त हो चुका था। मैं विद्यालय में बच्चों को संगीत की शिक्षा दे रहा था सायंकाल का समय था। अचानक श्री पन्नालाल जी जैन आते हुये दिखाई दिये। मैंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और लाकर अपने पास बिठाया श्री जैन ने बताया कि उन्हें अपनी १० वर्षीय बालिका को लेकर दूसरे दिन ग्वालियर मेडिकल कॉलेज जाना है। मैंने उनसे पूछा कि बालिका को क्या तकलीफ है। जिसका उपचार गुरसराय और झाँसी में नहीं हो पाया। उन्होंने बताया कि उसके दोनों पैर की एड़ियों में इतना दर्द है कि वह पैर जमीन पर नहीं रख पाती है। और उसे गोदी में उठा कर लाना ले जाना पड़ता है। मैंने उनसे कहा कि ग्वालियर की जगह कल दतिया चलें जहाँ गुरुदेव के

रूप में डॉ. आफ यूनिर्वस विराजे हुये हैं। जैन साहब ने यह बात स्वीकार कर ली और दूसरे दिन हम लोग बालिका को लेकर दतिया पहुँचे श्री गुरुदेव भगवान दतिया में स्थित चन्द्र वाटिका में विराजमान थे। हम लोगों को दूर से ही देखकर गुरुदेव ने आवाज लगाई क्या लल्ला पन्नालाल जैन हैं। यह सुनते ही पन्नालाल जैन बालिका को मेरी गोद में डाला और दौड़कर जाकर गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े। अपने बच्चों पर सहज ही अकारण कृपालु उन भक्त वत्सल प्रभु ने जैन साहब को हृदय से लगा लिया। तब तक मैं भी जैन साहब की बालिका को गोदी में लिये प्रभु के समीप पहुँच चुका था। प्रभु ने पूँछा लल्ला ये कौन बालिका है ? इसे गोदी में क्यों उठाये हुये हो ? मैंने निवेदन किया प्रभु जी ये आदरणीय जैन साहब की सुपुत्री है। अस्वस्थ है और जमीन पर पैर नहीं रख पाती है। यह सुनते ही उन कृपा सिन्धु ने उस बालिका को अपनी गोदी में ले लिया। अरे लल्ला पन्नालाल जैन की पुत्री को कैसा कष्ट एक गुलाब का पुष्प उठाया और उस बालिका को देकर कहा इसे अभी मेरे सामने खा ले। उस बच्ची ने तुरन्त श्री प्रभु की आज्ञा का पालन किया और पूरा पुष्प खा लिया। लगभग एक घण्टे श्री प्रभु के चरणों में रहने के बाद श्री प्रभु की आज्ञा लेकर हम झाँसी वापिस आने के लिए बस में बैठे एक पूरी खाली बर्थ पर बालिका को लिटा दिया। घोर आश्चर्य कि सर्दी के मौसम में भी उस बालिका को इतना पसीना आया कि जैसे पूरी बर्थ पर किसी ने कई लोटे पानी डाल दिया हो। झाँसी के इलाइट चौराहे पर जब बस आकर रुकी तो मैं और पन्नालाल जी पहले उतर गये कि बालिका को नीचे उतर कर गोदी में उतार लेंगे। तभी उस बालिका ने हाथ के इशारे से पन्नालाल जी को अलग कर दिया। और बस से नीचे कूद पड़ी। अपने दोनों पैर ज़मीन पर पटकती हुई बोली देखो पापा मेरे दोनों पैर बिल्कुल ठीक हो गये हैं। अब मैं चल सकती हूँ।

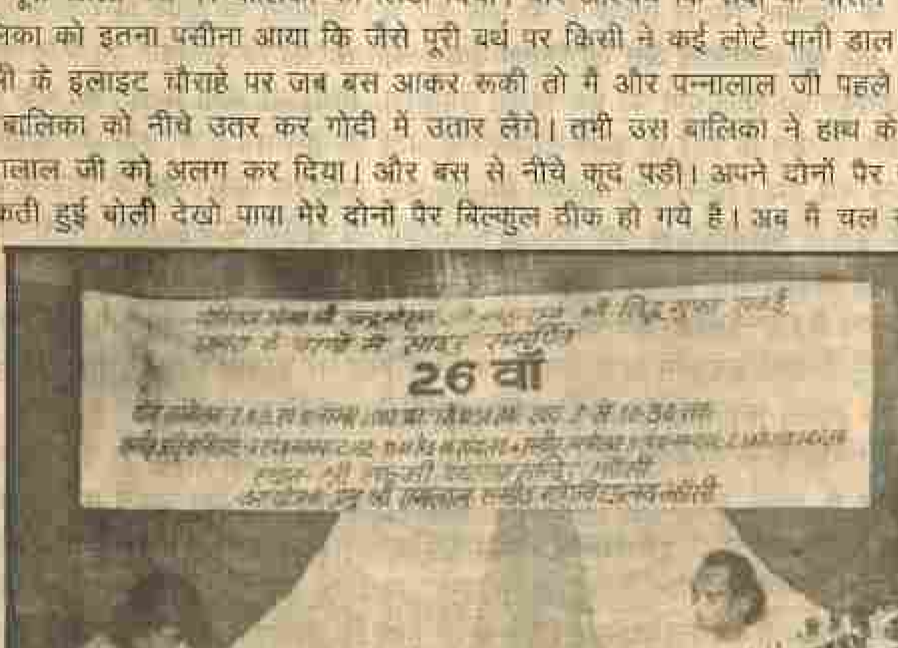

गत २६वें सम्मेलन में १० नवम्बर २००२ के सायंकाल लगभग ६ बजे श्री पन्नालाल जैन के सितार वादन का कार्यक्रम चल रहा था। तभी उन प्रभु के इस दीन बालक ने उपरोक्त दोनों घटनायें समस्त श्रोताओं और दर्शकों के बीच में सुनाई जिनका अनुमोदन श्री पन्नालाल जी ने अश्रुपूरित नेत्रों सहित किया तथा श्री गुरुदेव के सादर चरण कमलों में समर्पित रचना स्वयं सुनाई। जिन्हें अमेरिकन दूतावास में बीजा नहीं मिल रहा था, उन लोगों ने श्री गुरुदेव का परिचय माँगा तो इन्होंने यह छन्द सुनाया। श्री गुरुदेव जी की कृपा से ५ वर्ष का बीजा तत्काल श्री जैन साहब को मिल गया।

यह परिचय है श्री गुरुवर का,
ये सामवेद उद्घोषक हैं।
संगीत साधना में आये,
अवरोधों के अवरोधक हैं।

जड़ चेतन में संगीत भरा,
या कलकल करते झरनों में।
स्वर सौरभ बिखराते ऐसा,
जैसा बिखरा है सुमनों में।

इनके स्वर में मिलती करुणा की,
हिमगिरि सी ऊँचाई है।
स्वर ताल छन्द गंगा जमुना,
लय सागर सी गहराई है।
है प्रकृति छटा जितनी मनमोहक
उतने ये मनमोहक हैं।
यह परिचय है श्री गुरुवर का...

उस समय सैंकड़ों लोगों के साथ आदरणीय भुवनेन्द्र जी झा, आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा, ब्र. पूर्णचन्द्रजी, लखनऊ के भाई आदरणीय श्यामलालजी अग्रवाल सहित अनेक गुरुभाई बहन उपस्थित थे। झाँसी के कार्यक्रमों के माध्यम से सत्गुरुदेव भगवान ने जो अनेक कृपाये की उन घटनाओं को सिद्धयोग के माध्यम से भाई बहनों तक पहुँचाने का प्रयास उन्हीं प्रभु की कृपा से करते रहेंगे।

* * *

शीतकालीन सिद्धयोग काँगड़ा शिविर (हि० प्र०)

मेजर नन्दलाल शर्मा

हाय ! इतनी ठण्ड, कौन शिविर में जाए। रजाई में बैठना और चुस्की भर के चाए पीने में जो आनन्द है, वह और किसी वस्तु या क्रिया में नहीं है। हम क्यों इतनी ठंड में काँगड़ा जाएँ ? अगर कहीं सर्दी–जुकाम हो गया या बीमार हो गए तो। शायद मैं भी यही सोच रहा था। परन्तु आश्चर्य–आश्चर्य, श्री प्रभु जी के बच्चे बाईस तारीख को ही आना शुरू हो गए और भजन में जम गए। जिन्होंने करना होता है वह परिस्थितियाँ नहीं देखते। इसी का उदाहरण पेश किया श्री प्रभु जी के बच्चों ने। जो आनन्द लूट कर ले गए सो ले गए, जो रह गए वह रजाई और चाय की चुस्कियों में ही उलझ कर रह गए।

परमपिता परमात्मा की अपार कृपा से हर वर्ष की तरह इस बार भी 'सिद्धों की कृपा–स्थली' काँगड़ा में योग साधना शिविर बड़े ही हर्षो–उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। यह शीतकालीन शिविर पच्चीस दिसम्बर से तीन दिसम्बर तक चला। इन दिनों वहाँ आश्रम में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसे आत्म आनन्द की अनुभूति न हुई हो। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी उस 'परमानन्द' की मस्ती में डूबे रहे। चारों तरफ कृपा ही कृपा बरस रही थी।

इस शुभ अवसर पर दिल्ली, कानपुर, सहारनपुर, अलुपुर, अमृतसर, अम्बाला, शिवपुरी, लाड़वा, गुड़गाँव, पठानकोट, होशियारपुर तथा हिमाचल–प्रदेश के आस–पास के अनेक स्थानों से श्री प्रभु जी के बच्चे आये थे। शिविर के प्रत्येक दिवस का शुभारम्भ प्रातः साढ़े पाँच बजे योग आसनों से होता था। योग आसनों में मुख्य रूप से जीवन तत्व साधन की क्रियाएँ व कुछ अन्य योग आसन और प्राणायाम करवाए जाते थे। फिर सात बजे श्री प्रभु जी की आरती की जाती। यह आरती आदरणीय श्री भुवनेश्वर झा, आदरणीय आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा तथा स्वामी श्री विजयपुरी जी की अध्यक्षता में सभी साधकों द्वारा सामूहिक रूप से की जाती थी। अलौकिक आरती के बाद दिव्य प्रार्थना की जाती थी। कहते हैं कि उस प्रार्थना में जीवन का सार छिपा है, लेकिन ऐसा उसके लिए, जो समझ गया।

आरती के बाद श्री मद्भगवद् गीता के तीन अध्यायों का पाठ (प्रतिदिन) किया जाता था। फिर आदरणीय श्री चन्द्रहास शर्मा इस पवित्र गीता में गाई गई भगवान श्री कृष्ण जी की सिद्धवाणी (परावाणी) को गहराई से समझाते थे और इसमें वर्णित योग की विवेचना करते। इसके बाद भुवनेश्वर झा स्वामी श्री विजय पुरी जी, श्री ठाकुर जी, श्री चेतन्य शर्मा जी सुप्रीम कोर्ट अधिवक्ता और कुछ महिलाओं द्वारा श्री प्रभुजी के भजन गाए जाते थे तथा पूरा वातावरण प्रभु प्रेम में गूँज उठता था। इसी दौरान, आरती और भजनों के बीच शुरू हो जाती थी श्री प्रभु कृपा की 'अमृतमय वर्षा'। कई लोगों के ध्यान यूँही लग जाते थे, जिन्हें पता ही नहीं, कि ध्यान क्या होता है ? सीधे ही कुण्डलिनी (शक्ति) में हरकत शुरू हो जाती थी और कई प्रकार के आसन, प्राणायाम, बन्ध मुद्राएँ तथा नाड़ी शोधन की क्रियाएँ स्वतः ही होने लगती थी। आचार्य

श्री चन्द्रहास शर्मा जी से कुछ साधक ने जब इन क्रियाओं के बारे में पूछा तो उन्होंने उनको ऐसे ही टाल दिया। उनका कहना था कि वे ऐसे गुप्त प्राणायाम, बन्ध मुद्राएँ थीं कि जिनका वर्णन शास्त्रों में भी कम ही मिलता है। अगर उन साधकों को इसके बारे में बता दिया जाता तो उनमें अहम् वृत्ति उत्पन्न हो सकती थी।

प्रातः नौ बजे चाय स्वल्पाहार होता था और एक से दो बजे तक भोजन का समय तथा शाम चार बजे फिर चाय और रात्रि नौ से दस बजे तक फलाहार का समय निश्चित था। दिन में भी लगभग पूरा दिन भजन सत्संग व कुछ समय 'ॐ नमः शिवाय' का अखण्ड जाप होता था। सायंकाल पाँच बजे से लेकर साढ़े सात बजे तक आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा जी योग के भिन्न–भिन्न विषयों व अवस्थाओं पर अपनी मधुर वाणी से प्रवचन करते थे। शाम साढ़े सात बजे से आठ बजे तक श्री प्रभु जी की आरती की जाती थी। रात आठ से नौ बजे जब भजन संकीर्तन होता था तो पूरा वातावरण भक्तिमय हो उठता था। अभिप्राय यह कि सारे दिन व्यस्त कार्यक्रम चलता और समय कब बीत गया यह पता ही नहीं चलता।

अट्ठाईस दिसम्बर सुबह, श्री प्रभु जी ने एक और विचित्र लीला शुरू कर दी। श्री प्रभु जी की एक प्यारी बच्ची 'शिम्पु शारदा शर्मा' है, जो कि हर छोटे–बड़े उत्सव पर यहाँ आती है। श्री प्रभु जी की बड़ी कृपा है उस पर। पहले शिम्पु ज्यादातर दरबार में ही बैठती थी और कभी–कभी बाहर शिवालय में भी बैठती। यहाँ शुद्धि बहुत ही आवश्यक है। बिना नहाए, अशुद्ध वस्त्रों के साथ दरबार में प्रवेश वर्जित है। पुरुष वर्ग बिना धोती के तथा नारी जाति, बिना सर पर चुन्नी के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकते। पिछले शिविर, जून दो हजार दो (२००२) में यहाँ शिम्पु उन लोगों को बन्द आँखों से ही पकड़ लेती थी जो बिना नहाए या अशुद्ध वस्त्रों के साथ शिवालय से होकर गुजरते थे या फिर वे जो नियमों की परवाह किए बिना दरबार में बैठ जाते थे। उन पकड़े हुए व्यक्तियों के ऊपर किसी से कह कर दो–तीन बाल्टियाँ पानी डलवायी जाती थीं, तब जाकर उसका छुटकारा होता था। श्री प्रभुजी का एक बच्चा सुरजीत भी इस तरह लोगों को पकड़ लेता था।

वर्तमान शिविर में सुबह अट्ठाइस दिसम्बर को इस साधिका ने श्री प्रभु जी के निर्देशानुसार छः साधकों (रोहित, विवेक गुलेरिया, अनुपम शर्मा, राकेश शर्मा, मुनीश तथा श्री गोपाल जी) को शिवालय के नीचे ध्यान में बैठने को कहा। आज सुबह इन्हें चार–चार गिलास दूध पिलाया गया। रात को इन साधकों के साथ छः और साधक (राहुल, सुरजीत, विवेक शर्मा, मनु शर्मा, रोहित शर्मा (दिल्ली), अभिराज तथा दो साधिकाएँ (गोपिका और सौम्या) भी शामिल हो गईं। अब इन सबको पाँच से लेकर छः–छः गिलास दूध के पिलाए गए। कुछ लड़कों का बैठना मुश्किल हो रहा था, इसलिए उन्होंने हार कर शिम्पु से पूछ लिया और भजन गाना शुरू कर दिए। सुबह उन्तीस दिसम्बर को उन चौदह बच्चों को रात की भाँति शिवालय में बिठाया गया। आज उन्हें सात–सात गिलास दूध पिलाया गया। चार–पाँच साधकों को तो रात को ही दस्त लग पड़े थे। उनतीस दिसम्बर रात को फिर इन साधकों को शिवालय में शिम्पु द्वारा बिठाया गया और सात

से लेकर आठ–आठ गिलास दूध के पिलाए गए। अब सबसे अधिक नौ गिलास दूध मनु शर्मा को पिलाया गया।

सुबह तीस दिसम्बर को फिर वहीं चौदह बच्चे बिठाए गए और दूध पिलाना शुरू किया। विवेक शर्मा गुलेरिया और राकेश शर्मा ने एक–एक गिलास पीकर ही उल्टी कर दी। उन्हें वैसे ही छोड़ दिया गया और बाकियों को कम से कम नौ–नौ गिलास दूध पिलाया गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने भजन गाने शुरू कर दिए। आज एक अन्य महिला मोनिका को भी दो गिलास दूध के पिलाए गए। तीस दिसम्बर रात को फिर उन्हीं चौदह साधकों को ध्यान में बिठाया गया। और सभी को नौ–नौ गिलास दूध पिलाया गया। इसके अलावा श्रीमती मनोरमा, मुनीश गुप्ता को दो–दो गिलास दूध के पिलाए गए और बैंक मैनेजर शर्मा जी को मात्र दो घूँट दूध के पिलाए गए। आज सबसे अधिक ग्यारह गिलास दूध मुनीश को पिलाए गए। आज तो तीन–चार साधकों और दो साधिकाओं को छोड़कर बाकी सभी को दस्त शुरू हो गए थे। ३१ दिसम्बर (३१ दिसम्बर, २००२) की सुबह अनुपम शर्मा, राहुल, रोहित, मुनीश, सुरजीत, आनन्द, गोपिका, सौम्या, रोहित (दिल्ली) को ही ध्यान में बिठाया गया। परन्तु आज सभी दूध पीने से बच गए। आज सभी को एक–दो घण्टे बाद छोड़ दिया गया।

ध्यान में रहे, यह सब शिम्पु शारदा बन्द आँखों में ही श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार करती थीं और दूध रसोई में बनाकर श्री प्रभु जी की प्यारी बच्ची श्रीमती शोभा देवी जी लाती थीं। शिम्पु देवी मुँह से कुछ नहीं बोलती थी, सिर्फ चिल्लाती थी और पास बैठे किसी साधक को हाथ की अंगुली से फर्श पर लिख कर बताती थीं। यह श्री प्रभुजी की कैसी अजब लीला थी, यह तो वे ही जाने। इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। वैसे भी इस आश्रम में कोई भी विषय वाणी का नहीं है। और यहाँ बुद्धि का प्रयोग करना मूर्खता है। आखिरकार यहाँ सिद्धों की लीलाएँ हैं। जो अपनी चरम सीमा पर हैं। ये सब कार्य संस्कारी साधकों की नाड़ी शुद्धि के लिए श्री प्रभुजी ने ध्यान में सभी साधकों को कराये।

ऐसा भी कभी हो सकता है कि 'सिद्धों की कृपास्थली कांगड़ा' की बात चल रही हो और यहाँ पर साधनारत श्री महात्मा जी की बात ना हो ? आप उनके वर्तमान जीवन से परिचित होंगे। चाहे पौष महीने की सर्दी हो या आषाढ़ की गर्मी, मात्र शरीरपर एक लंगोटी (या परना) और कभी–कभी एक शाल भी ओढ़े हुए देखा जा सकता है और तो और पूरे साल भर टंकी के ही (गर्मियों में टंकी का गर्म पानी, सर्दियों में बर्फीले) पानी से नहाना।

किसी ने यह ठीक ही कहा है कि अगर ईश्वर प्राप्ति करनी है तो पहले अपने आप को मारना होगा। श्री महात्मा जी की एक और विशेष बात मुझे याद आ रही है, 'उनकी आज्ञापालन की । श्री महात्मा जी को जब घर में ही श्री प्रभु जी की आज्ञा हुई, मन्दिर में रहने की, तो उन्होंने बिना कुछ सोचे समझे ही कि इसका परिणाम क्या होगा, केवल श्री प्रभु जी की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि सारा समाज विरोधी हो जाएगा। घर में माता–पिता जी

अकेले हैं, नौकरी, शादी, फिर क्या बीबी–बच्चे, कितना मजा आएगा और मैं इन सबको छोड़कर वहाँ जाऊँ, जहाँ न शौच जाने की सुविधा है न नहाने की। जबकि घर में तीन–तीन शौचालय स्नानागार हैं। इतनी सुख–सुविधाएँ होने पर उनको मात्र एक ही लक्ष्य दिखाई दिया होगा, श्री प्रभुजी की आज्ञा। यह वही कर सकता है जिसमें गुरु निष्ठा कूट–कूट कर भरी हो। हम अपने आप को देख लें कि हम कितनी आज्ञाओं का पालन करते हैं। सिर्फ श्री प्रभु जी का जयकारा लगाने में, वाणी से श्री प्रभु जी की जय हो, सबसे आगे और आज्ञापालन में टाएँ–टाएँ फिस्स। यही कारण है कि हम दुःखों और समस्याओं के घेरे में हैं। श्री महात्मा जी की यही सबसे बड़ी विशेषता रही और है, कि चाहे 'सिर कट जाए तो कट जाए' पर आज्ञा का उल्लंघन न होने पाए। आज उसी का परिणाम हमारे सामने है।

अब तो न किसी की तरफ नजर उठाकर देखना, न मुँह से एक भी शब्द कहना। सुबह–शाम छः–छः घण्टे समाधि में बैठना और पूरा दिनभर कुटिया क्षेत्र में एकान्त में रहना। पिछले अढ़ाई वर्षों से अन्न–जल का भी त्याग कर दिया है। सिर्फ दो वक्त दूध ले लेते हैं। यही स्थिति है उनकी, न किसी से कुछ लेना न देना, प्रभु चरण कमलों में मगन रहना। अब तो उनकी हर क्रिया आज्ञा के अनुसार है। उनके दर्शन सुबह पाँच बजे समाधि में बैठने से पहले और ग्यारह–बारह बजे के बीच समाधि से उठने के बाद होते हैं। ठीक इसी तरह शाम को पाँच बजे समाधि में बैठने से पहले और रात्रि नौ–दस बजे समाधि से उठने के बाद।

श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार रात्रि साढ़े आठ बजे श्री महात्मा जी दरबार में आए और बीस–पच्चीस मिनट तक वहाँ बैठे रहे। उनके आते ही महिलाओं ने भजन गाना शुरू कर दिया और श्री महात्मा जी ने अपनी कॉपी पर कुछ लिखना शुरू कर दिया। कुछ देर बाद श्री महात्मा जी द्वारा लिखित ये शब्द पढ़कर सुनाए गए। श्री महात्मा जी द्वारा लिखे शब्द इस प्रकार थे–"श्री प्रभुजी कहते हैं कि इस तपस्थली में पवित्रता रखें। अधिक से अधिक शुद्धि का प्रयोग करें। इतनी शुद्धि रखें कि श्री प्रभु चरणों का चरणामृत हाथों में लेकर उसे दरबार से बाहर जाकर पीएँ। कभी भी मान–सम्मान के चक्कर में मत पड़ना नहीं तो लुट जाओगे। न ही किसी से अपने चरण स्पर्श करवाएँ और न ही किसी के चरण स्पर्श करें। श्री प्रभुजी का कहना है कि ध्यानी बच्चों पर कोई क्लिष्ट संस्कार आने वाला है अतः सावधान रहें। साधना में तुम्हारे माता–पिता, भाई–बहन, सगे–सम्बन्धी कोई भी सहायक नहीं बनेंगे। इसलिए अकेले चलने का अभ्यास डालो। तुम्हें साधना से ही मतलब होना चाहिए, क्योंकि तुम्हें अगर कुछ करना है तो बस साधना, बाकी सभी झमेलों को छोड़ दो।" उन्होंने सभी का "लक्ष्य" मात्र ईश्वर प्राप्ति ही बतलाया, कि यही हम सभी के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। श्री महात्मा जी ने कहा यह वही कह सकता है तो स्वयं उस रास्ते पर चला हो और जिसने उसे प्रत्यक्ष देखा हो। जो सिर्फ वाणी से ही कहते हैं और दूसरों को उपदेश देते हैं। चाहे वह टी.वी. हो या धोती–कुर्ते डालकर मंच पर प्रवचन हो, उसका कुछ असर भी नहीं होगा। क्योंकि यह तो वही बात होगी कि 'दूसरों के नसीहत, खुद मियाँ फजीहत'। सबके देखते ही देखते श्री महात्मा जी उठकर चले गए और कुछ

लोगों की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। धन्य है वह माँ, धन्य है वह पिता, जिन्होंने ऐसी पुण्य आत्मा को जन्म दिया।

३१ दिसम्बर सुबह, अब समय आ गया, दूर–दूर से आए श्री प्रभु जी के प्यारे बच्चों का, अपने घर प्रस्थान करने का। जाने से पहले जो भी श्री स्वामी जी के पास आ रहा था, यही अश्रु बहा रहा था और यही कह रहा था कि चाहे अगला शिविर पच्चीस जून से शुरू होगा, परन्तु हम तो यहाँ पहले ही आ जाएंगे। कई तो ऐसे समर्पित भाव वाले थे जो यह कह रहे थे कि श्री महात्मा जी एक बार कह दें कि, यहीं रहो, हम तो सब कुछ छोड़कर यहीं रहेंगे। लेकिन वह कहें तो सही। फिर भी हमें आशा है कि श्री प्रभु जी हमारी अभिलाषा श्री महात्मा जी के द्वारा अवश्य ही पूर्ण करेंगे। ऐसी दिव्य महिमा है, सिद्धों की कृपास्थली कांगड़ा की। श्री महात्मा जी जो देखते भी नहीं, बोलते भी नहीं, न ही सुनते हैं किसी की, बस अपनी ही मस्ती में मस्त रहते हैं। उनके प्रति इतना प्रेम श्री प्रभु जी के बच्चों का, आखिर यह कहाँ से आया, यह है क्या ? क्या इसी का नाम दिल से दिल का सच्चा सौदा होता है। मैं पंजाब निवासी होने के बावजूद भी सभी समर्पित प्रभु बच्चों की तरह अपना दिल कांगड़ा में दे आया हूँ इसी आशा के साथ कि कोई दिलवर ही दिल को सम्भाल सकता है।

कुल मिलाकर छः दिवसीय शिविर बहुत ही अच्छा चला। इतनी ठण्ड होने के बावजूद भी सभी साधकों में अभूतपूर्व उत्साह था। जो भी यहाँ आया, कुछ न कुछ लेकर ही गया। उस परमानन्द के आनन्द को पा कर ही गया था, प्रत्यक्ष देखकर ही गया। श्री प्रभु जी सबका मंगल करें। जय सद्गुरूदेव।

संस्मरणीय कांगड़ा योग शिविर

चेतन शर्मा एडवोकेट का अनुभव

कांगड़ा की पावन भूमि पर २५ दिसम्बर सन् २००२ से ३१ दिसम्बर तक श्री सिद्धयोग मन्दिर में अनेकानेक साधकगण देश के विभिन्न प्रान्तों से एकत्रित हुए। ऐसा सुदुर्लभ अवसर न जाने किस जन्म का सुकृत का फल है–यह कहना या जानना असम्भव सा है। इस पूरे भूमण्डल पर न जाने कितने तीर्थ हैं, अपितु कांगड़ा का सिद्धयोग–मन्दिर अपने आप में एक विशिष्ट व अनुपम स्थान लिये हुए है। प्राकृत गुणों से सर्वथा परे, और प्रकृति के नियमों से पृथक, यह एक ऐसा पुनीत स्थान है जो माया को पूर्ण परास्त करते हुए कलिकाल के हर पक्ष से अनभिज्ञ है। हो भी क्यों न। योगेश्वर श्री प्रभुजी की असीम कृपावृष्टि कांगड़ा के उस पुनीत स्थान पर सर्वविदित है।

गत साल से प्रभुजी एक साधारण लड़के के द्वारा ऐसी घोर तपस्या करवा रहे हैं जिसका कलियुग में प्रायः लोप है। ऐसी साधना सतयुग में हुआ करती होगी। यह तो सामान्यता सुनने में आता है, वरना ऐसी विकट व अद्भुत साधना कलयुग में हो रही हो, या हुई हो–ऐसे प्रमाण मिलना अतिशय कठिन है।

दिल्ली हाईकोर्ट में गत ३५ वर्ष से वकालत करते हुए अधिवक्ता श्री कुलवंत राय गुप्ता का कहना है कि न केवल सिद्धयोग मन्दिर व उसका प्रांगण अपितु पूरे कांगड़ा नगर पर एक विशिष्ट शक्ति-कृपा सम्पन्न अखण्ड मंडलाकार दिव्य पुंज का प्रकाश है। गुप्ता जी लहिड़ी महाशय के दीक्षित योगी शिष्य हैं। वे एक तटस्थ व्यक्ति हैं, और कांगड़ा आने से पहले उन्हें श्री प्रभुजी व श्री चन्द्रमोहन जी के विषय में कुछ भी पता न था। उन्होंने आगे अपने शब्दों का विवरण करते हुए कहा "यह एक आध्यात्मिक प्रैक्टिकल प्रयोगशाला है"। आज आध्यात्म जगत की विडम्बना यह है-कि जितना प्रपंच कर प्रचार इस क्षेत्र में है, वह प्रपंच और मायाजाल-भौतिक जगत के किसी भी पहलू से कम न होगा। आध्यात्मक के ठेकेदार बने बड़े-बड़े सरदार और अधिपति यदि एक बार कांगड़ा के इस विलक्षण स्थान को देख लें, तो उन्हें तत्क्षण समझ में आ जावेगा कि आज तक बेले हुए पापड़ निरर्थक हैं। शायद ठीक उस तरह, जब तत्कालीन समय में वेदांत के अरण्य में अपने आप को सिंह बताने वाले और शास्त्रार्थ में दिग्विजयी श्री प्रबोधानन्द सरस्वती ने अपने द्वारा रचित ७०० वेदांत के ग्रन्थ उस समय श्री यमुना जी श्री में विसर्जित कर दिया जब महाप्रभु चैतन्य ने उन्हें स्पर्श कर कृष्ण प्रेमानुभूति कराई थी।

कांगड़ा अब एक पहाडी कस्बा न होकर एक धाम बन चुका है। कांगड़ावासियों पर श्री प्रभुजी ने मुक्त ..स्त से ऐसी कृपायें बरसाई हैं, जो कि हजारों वर्ष घोर तपस्या के बाद भी उपलब्ध न हों।

सुनकर भयभीत भी होना स्वाभाविक है, कि-अब किसी भी समय यह पावन स्थान सदा के लिए बंद हो सकता है। केवल अधिकारी ही प्रवेश पायेंगे-कौन अधिकारी वे जो, मल-मूत्र का त्याग न करते हों, जो न सोते हों-न खाते हों-सरल शब्दों में यह सिद्ध स्थान केवल सिद्धों के लिये ही होगा।

इस बार के शिविर की विशेषता यह रही की श्री प्रभुजी ने अपने प्रिय ध्यानी बच्चों की कक्षा ली। सुबह व सन्ध्याकाल घण्टों तक ध्यान-समाधि की अनुपम दिव्य ऊँचाइयाँ पा जाना-यहाँ मानो सामान्य बाल्य प्रयास सा दीखता था। क्लास वाले बच्चों को प्रभुजी द्वारा कृपाप्रसादी दूध सेवन कराया जाता था, कई बार तो किसी एक बच्चे को १० ग्लास दूध पीना ही पड़ता था। यह सब आलौकिक साम्राज्य से संबंधित है। किस बच्चे को कौन सी क्रिया करवानी है-सब यथा समय प्रभुजी करवा रहे थे।

एक वयस्क व्यक्ति, भी एक दिन उस वृक्ष के सान्निध्य में आ पहुँचा तो विजय पुरी जी की पत्नी अथवा गोपाल की यशोमती माँ ने, उसे भी वह दूध पिलाया। ५-६ घूँट भरने के बाद उस व्यक्ति के हाथ में आधा ग्लास दूध पड़ा ही रह गया। ऐसा दिव्य नशा था उसे। सत्संग हाल के भीतर आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा प्रवचन की अमृत वृष्टि कर रहे थे या फिर यूँ कहा जाय कि श्री प्रभु जी स्वयं उनसे बुलवा रहे थे। ऐसी वाणी आ रही थी जो सीधी हृदय पटल को विदीर्ण कर जाती। श्री गीता जी को संबल बनाकर, बड़े मार्मिक भाव से ओत-प्रोत, आचार्य जी के प्रवचन मानव की दशा व दिशा दानों का सटीक निर्धारित कर रहे थे। तात्पर्य यह रहा कि आज का मानव स्वच्छता में तो प्रवीण हो चुका है, परन्तु पवित्रता से कोसों दूर चला आ रहा

है। खान-पान से पहनावे तक आज सब कुछ तड़क-भड़क से परिपूर्ण है परन्तु उसमें पवित्रता कहीं भी नहीं है। आचार्य जी ने आहार शुद्धि तथा तत्व शुद्धि पर विशेष बल दिया। बाजारों के पत्तलों पर चटोरे इस तरह टूट कर पड़ रहे हैं मानों किसी मृत जीव पर चील। होटलों में खाना खाना आधुनिक समाज का परिचायक ऊटपटांग जीवन बन गया है। समाज की गिरावट का मुख्य कारण बेहूदा खान-पान व चटोरापन है। आचार्यजी ने इंगित किया कि हमारा भोजन सरल, पौष्टिक व सात्विक होना चाहिये। एक समर्थ गुरु का वरद-हस्त प्राप्त होने के बारे में उन्होंने कहा "अरे भाई ! तुम्हारा कोई जमानती भी तो होना चाहिये"। अभिप्राय यह कि निगुरों के लिये-लोक और परलोक दोनों रिक्त हैं। गुरु भी ऐसा जो सर्वदा और सर्वथा तुम्हारा साथ दे। ऐसी क्षमता वाले और ऐसे सामर्थ्यवान गुरु का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

उन्होंने विस्तार से यह बताया कि गुरु का बाह्य स्वरूप एक माइक की तरह है। इसमें फंसना नहीं है। माइक के पीछे जो बोल रहा है-वह महत्वपूर्ण है। अतः प्रभुजी या अन्यान्य सिद्ध पुरुषों व इष्ट देवों के पीछे जो दिव्य अखण्ड-मण्डलाकार शक्ति पुंज है-वही ईश्वरीय सत्ता का प्रतिपादन करता है।

प्रभुजी की कितनी कृपा-इसका उल्लेख करते हुए आचार्य जी ने कहा कि वह अनथके बोल सकते हैं-क्योंकि बुलवाने वाले कोई और हैं। शिविर ठीक प्रातः ५-३० बजे आरम्भ हो जाता था। जीवन-तत्व साधन के साथ। कांगड़ा का तापमान-शून्य के आस-पास ही होगा। लेकिन किसी में भी उत्साह और उमंग की कोई कमी नहीं थी। सभी के साथ कोई न कोई अलौकिक घटना अवश्य घटी। दिल्ली से आये तक उद्योगपति जो कि भगवान नित्यानंद व मुक्तानंद के शिष्य थे-उन्हें सूर्य व धरती में अनेक दिव्य रंग दिखलाई पड़े। यह अनुभूति उन्हें बहुत देर तक रही। वृद्ध होने पर भी वे घण्टों तक समाधिस्थ बैठे रहे-पद्मासन में।

३० दिसम्बर को अप्रत्याशित ढंग से महात्मा जी साधकों के बीच आए। उन्होंने श्री प्रभु जी की ओर से कहा कि कांगड़ा आना ही अपने आप में महत्वपूर्ण न होगा। जो मार्ग और जीवन शैली सिखाई गई है- उस पर पूर्ण उतरना-यही गुरु-भक्ति है।

सबको नोट बुक में लिखवाया गया कि-ईश्वर प्राप्ति ही लक्ष्य है मेरे जीवन का। श्री प्रभुजी आप मेरे जीवन में हैं, तभी संसार के कार्य हैं। नौकरी, पढ़ाई, रुपया, व्यापार, बीबी, बच्चे, ...और अगर आप नहीं हैं तो कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने हर साधक से कहा कि यह शब्द नित्य पढ़ने चाहिये।

३० दिसम्बर को भंडारा आयोजित हुआ। सभी ने भंडारा के प्रसाद का आनन्द उठाया। भजन भी खूब गाये गये। महात्मा जी ने बहनों व माताओं को भजन गाने के लिये कहा। भाई लोगों ने भी खूब रुचिकर भजन गाए। विशेष रूप से आदरणीय पुरी भाई साहब व कानपुर से पधारे ठाकुरजी के भजनों में सुन्दर गुरु भक्ति ओत-प्रोत थी। कांगड़ा का दिव्य-शिविर भले ही हो गया हो लेकिन समाचार अभी भी आ रहे हैं कि जो साधक वहाँ गए उनके साथ दिव्य यौगिक क्रियायें घर बैठे हो रही हैं।

* * *

श्री एन.पी. वाजपेयी को जीवनदान

प्रेषक–केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

वैसे तो हम सभी जिन्होंने आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अशरण शरण ग्रहण की है महान भाग्यशाली हैं। परन्तु हममें से कुछ ऐसे भाग्यवान भी हैं जिन्हें योगिराज श्री गुरूदेव की अमोघ वाणी आरती करने से पूर्व कभी–कभी स्पष्ट सुनायी देती है कि "लल्ला ! मैं आ गया हूँ अब आरती आरम्भ करो।" साथ ही परिवार पर भविष्य में घटित होने वाली प्रत्येक शुभ अशुभ घटना का स्पष्ट संकेत मिलता है। ऐसे ही एक भाग्यशाली परिवार के मुखिया का नाम है श्री एन.पी. (नागेन्द्र प्रसाद) बाजपेयी। इनका पैतृक मकान तो गऊशाला जनपद इटावा उत्तर प्रदेश में है। परन्तु इन्होंने अपना निवास स्थान रामकृष्ण पुरम MIG-5, शिवपुरी मध्यप्रदेश में बनाया है। कारण यह था कि श्री बाजपेयी जी इस शिवपुरी एवं इसके नजदीक इलाके में शिक्षा विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। आपकी सौभाग्यवती पत्नी का नाम श्रीमती लक्ष्मी बाजपेयी है एवं इस समय शिक्षा विभाग में प्रवक्ता के पद से रिटायर्ड है। पति पत्नी का यह जोड़ा बहुत ही सरल, मृदुभाषी एवं श्री गुरूदेव की कृपाओं से ओत–प्रोत हैं। इन लोगों के अलावा इनके परिवार में तीन पुत्रियाँ एवं एक पुत्र है। दो लड़कियों की शादी हो चुकी है। एक लड़की एवं पुत्र की शादी होना अभी शेष है।

नौकरी में प्रवेश पाते ही श्री बाजपेयी जी का सम्पर्क हमारे एक आदरणीय गुरूभाई श्री नरेन्द्र सिंह भदौरिया जी से हुआ। जो इन्हीं के कालेज में प्राध्यापक थे। आदरणीय भाई भदौरिया जी सन् उन्नीस सौ साठ के आसपास ही श्री गुरू चरणों में आश्रय प्राप्त कर योग दीक्षा ग्रहण कर चुके हैं एवं उनका पूरा परिवार श्री गुरूदेव की अलौकिक कृपाओं से पूरी तरह आच्छादित है। हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरूभाई भदौरिया जी उन कृपापात्र शिष्यों में से हैं, जिनका श्री गुरू कृपा वर्णन करना नियति सा बन गया है। ईश्वर भक्ति की ये पंक्तियाँ उनके जीवन में स्पष्ट परिलक्षित होती हैं कि–

लाली तेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।।

फिर हमारे भाई श्री नागेन्द्र प्रसाद बाजपेयी जी इनसे अछूते कैसे रहते, इनके ऊपर भी श्री गुरूदेव भगवान की लाली का प्रभाव पड़ ही गया। श्री गुरूदेव भगवान की कृपा लीलाओं को सुनना इन्हें बड़ा ही आनन्ददायक लगने लगा। ये आदरणीय श्री भदौरिया जी से निवेदन करके खाली समय में गुरूकृपा चरित्र सुनने के आदी बन गये। इसी तारतम्य में आदरणीय भदौरिया जी के मकान में आरती–पूजन कक्ष में विराजमान आराध्यदेव जी महाराज एवं दादा गुरूदेव महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज के स्वरूपों का कई बार दर्शन करके इन्होंने साष्टांग प्रणाम भी किया। समय धीरे–धीरे बीतता चला गया एवं श्री गुरूदेव के चरणों में इनकी श्रद्धा भी धीरे–धीरे बढ़ती चली गयी।

सन् उन्नीस सौ सरसठ में जब ये एक तीर्थयात्री बस से तीर्थयात्रा पर जा रहे थे, इनके तीर्थयात्री बस की जोरदार टक्कर सामान से लदे एक ट्रक से हो गयी। इनके मुख से अनायास यह शब्द निकल गया कि 'भदौरिया के गुरुदेव हमें बचाओ। तत्काल श्री गुरुदेव का मुखमण्डल दिखायी दिया एवं अपने मुखारबिन्दु से बोले—"लल्ला ! घबराओ नहीं तुम सकुशल बच जाओगे।" उस बस के काफी यात्री काल कलवित हो गये परन्तु श्री भदौरिया के गुरुदेव की कृपा से श्री बाजपेयी जी को खरोंच तक नहीं आयी। तीर्थयात्रा से वापस आकर सर्वप्रथम ये श्री भदौरिया जी के मकान पर गये, हाथ पैर धोकर श्री गुरुदेव के स्वरूपों को साष्टांग प्रणाम किया एवं बोले—भदौरिया जी आप के गुरुदेव सचमुच सर्वसमर्थ सिद्ध योगेश्वर हैं, इसमें संशय की रंचमात्र भी गुंजाइश नहीं है। आदरणीय भाई भदौरिया जी ने जब प्रश्न किया कि वो कैसे ? तो इन्होंने पूरी घटना का सविस्तार वर्णन किया। इस कृपा प्रसंग सत्संग में श्रोता वक्ता दोनों की आँखों से पूरे समय तक लगातार अश्रुपात होता रहा।

सन् उन्नीस सौ चौहत्तर का जुलाई माह का अन्तिम सप्ताह था। ऐसा बुरा समय आया कि ये बाढ़ के पानी के क्षेत्र में पड़ गये। आदरणीय भाई श्री नागेन्द्र बाजपेयी जी थोड़ा तैरना जानते थे, अतः जब तक बस चला हाथ पाँव चलाते रहे। इधर वे तैरते–तैरते थकने लगे एवं उधर बाढ़ के पानी की गहराई एवं धारा तेज होती गयी। अन्त में वे असहाय होकर अपने जीवन से निराश हो गये। श्री प्रभु बच्चों को मुसीबत के समय अपने आराध्य की याद अनायास ही आ जाती है। इन्होंने फिर मन ही मन श्री गुरुदेव भगवान को याद करते हुए यह प्रार्थना की—'हे भदौरिया जी के सर्व समर्थ गुरुदेव। यदि आपने सहायता नहीं की तो मैं मर जाऊँगा।' इस बार इन्हें दिखलायी तो कुछ नहीं दिया परन्तु यह स्पष्ट रूप से अनुभव हुआ कि पानी के भीतर किसी ने हाथ लगाकर बाढ़ क्षेत्र के अथाह पानी से निकालकर किनारे पहुँचाने तक इनकी पूरी–पूरी सहायता की। इस विपत्ति से छुटकारा पाने के बाद भी ये सीधे आदरणीय भाई भदौरिया जी से मिले एवं उनको पूरा कृपा प्रसंग बतलाने के बाद अपने परिवार में जाकर श्री गुरुदेव की अहैतुकी सहायता की बात श्रद्धायुक्त मन से सप्रेम सुनायी।

आराध्यदेव योगिराज गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रथम स्थूल दर्शन श्री बाजपेयी जी ने आदरणीय भाई श्री भदौरिया जी के साथ, दतिया मण्डल द्वारा मनाये जाने वाले श्री गुरुदेव के जन्मदिन पर किये थे। सन् उन्नीस सौ पचासी में उन्होंने श्री चरणों में योगदीक्षा ग्रहण की। सन् उन्नीस सौ छियासी में पूरे परिवार एवं बाल गोपालों के साथ आपने श्री गुरुदेव भगवान के दर्शन एवं सत्संग लाभ लिया एवं इसी समय श्री बाजपेयी जी ने अपनी धर्मपरायणा पत्नि के साथ श्री गुरुदेव भगवान से सपत्निक योग दीक्षा ग्रहण की। योग दीक्षा के पश्चात आप लोगों ने श्री गुरुदेव भगवान के करकमलों से श्री गुरुदेव का एवं जगत नियन्ता दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दिव्य स्वरूप प्राप्त किये। उसी समय से दोनों समय प्रातः सायं श्री गुरुदेव द्वय का आरती पूजन एवं मंत्रजप तथा ध्यान में बैठने का क्रम विधिवत् आरम्भ कर दिया था।

आदरणीय गुरुबहन श्रीमती लक्ष्मी बाजपेयी की ध्यान स्थिति अच्छी चल रही है। सन् उन्नीस सौ चौरानवे में रविवार के दिन इनके पतिदेव श्री नागेन्द्र प्रसाद बाजपेयी जी किसी आवश्यक कार्यवश प्रातःकाल आठ बजे ही चले गये एवं रात्रि के करीब नौ बजे स्कूटर से वापस आ रहे थे। इस समय श्रीमती बाजपेयी सायंकालीन आरती करने के बाद ध्यान में बैठी हुयीं थीं। श्री बाजपेयी जी का स्कूटर एक विपरीत दिशा से आने वाले एक स्कूटर सवार के स्कूटर से बुरी तरह टकरा गया। स्कूटरों की गति काफी तेज थी अतः लड़ने के बाद दोनों स्कूटर सवार गम्भीर रूप से घायल हो गये तथा लहूलुहान होकर जमीन पर गिर पड़े। ध्यानस्थ श्रीमती बाजपेयी जी ने ध्यान में घटना को स्पष्ट रूप से देखा। इन्होंने ध्यान में ही चिल्लाना आरम्भ किया, "नहीं गुरूदेव ! नहीं, इन्हें बचाओ प्रभु ! इन्हें बचाओ।" इसके बाद ये थोड़ी देर ध्यान में बैठी रहीं एवं फिर ध्यान से उठ गयीं। उसके करीब आधा घण्टा बाद श्री बाजपेयी जी स्कूटर से वापस आये। बहुत मामूली सी चोट आयी थी जो तीन चार दिन में ठीक हो गयी। चोट के बारे में अपनी पत्नी द्वारा पूछे जाने पर बाजपेयी जी ने पूरी घटना का वर्णन किया। श्री बाजपेयी जी ने बताया कि टक्कर इतनी तेज थी कि दूसरा स्कूटर सवार चोट लगने के कारण बेहोशी की हालत में जीप पर लादकर अस्पताल ले जाया गया। शायद श्री बाजपेयी जी इस रहस्य को भूल गये कि उनकी भी वही गति होनी थी जो दूसरे स्कूटर चालक की हुयी थी परन्तु करूणानिधान की कृपा से सकुशल बच गये। परन्तु यह तथ्य उनकी धर्मपरायणा पत्नि स्पष्ट अनुभव कर रही थीं।

श्री बाजपेयी जी अस्थमा (श्वास रोग) के रोगी हैं एवं शीत लहर एवं जाड़े के मौसम में इनका यह रोग महान कष्ट दायक हो जाता है। सन् उन्नीस सौ छियानवें में जनवरी माह में बर्फ गिरने के कारण मौसम काफी नम हो गया था एवं बर्फीली हवायें चल रही थीं। इस समय श्री बाजपेयी जी की तबीयत खराब हो गयी एवं धीरे-धीरे इनका श्वास रोग बढ़ता ही गया तथा एक समय वह भी आ गया जब इन्हें सांस लेने में अत्यधिक कठिनाई होने लगी। श्वांस रोग की पराकाष्ठा यहाँ तक पहुँच गयी कि श्री बाजपेयी जी सुध-बुध खोकर बेहोश हो गये एवं इनका बाह्य संसार से नाता समाप्त सा ही हो गया। ऐसी स्थिति आने पर इनकी साध्वी धर्मपत्नी ने पड़ोसियों एवं हितैषियों की सहायता से इन्हें शहर के एक सुव्यवस्थित नर्सिंगहोम में भर्ती कराया। नर्सिंगहोम में भर्ती होने के साथ ही इनका समुचित इलाज प्रारम्भ हो गया। इनका हृदय बहुत धीमी गति से कार्य कर रहा था। जनरल चेकिंग के बाद डाक्टरों ने जब ई. सी.जी. मशीन से चेकिंग आरम्भ की तो सभी किम्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गये क्योंकि मशीन पर कोई रीडिंग नहीं आ रही थी। श्रद्धावान एवं सरल स्वभाव के पाठकों को इस तथ्य से अवगत करा देना समीचीन होगा कि ई.सी.जी. वह मशीन है जो हृदय की कार्यक्षमता नापती है और यह कि हृदय कितने प्रतिशत कार्य कर रहा है। यदि हृदय थोड़ा भी कार्य कर रहा है तो इस मशीन

पर रीडिंग आ जाती है। यदि मशीन पर कोई रीडिंग नहीं आती तो रोगी को मृत घोषित कर दिया जाता है। यही कारण था कि मशीन पर शून्य रीडिंग आने पर श्री बाजपेयी जी का इलाज कर रहे डाक्टर निराश हो गये थे। उन्होंने अपने सीनियर डाक्टर तथा उस नर्सिंगहोम के हृदय रोग विशेषज्ञ को तत्काल बुलाया। इस मध्य समय में (डाक्टर को बुलाने की खबर भेजने एवं उसके बाजपेयी जी के पास आने तक) इनका हृदय बिल्कुल ही कार्य नहीं कर रहा था। सीनियर डाक्टर ने आने के बाद सर्वप्रथम मशीन को चैक किया एवं फिर उस मशीन से बाजपेयी जी की चेकिंग आरम्भ की। उस समय भी रीडिंग शून्य थी। वह अपने बाँये हाथ की तर्जनी दाँत के मध्य रखकर गहन चिन्तन कर ही रहा था कि ई.सी.जी. मशीन पर से शून्य सिग्नल हटा एवं रीडिंग क्रमशः बढ़ती गयी। बढ़ते–बढ़ते रीडिंग उस स्थान पर पहुँच गयी जो एक प्राणी के जीवित रहने की न्यूनतम रीडिंग है। इसके बाद सीनियर डाक्टर ने श्रीमती बाजपेयी की तरफ देख कर कहा "यू आर लकी, मिस्टर बाजपेयी हैज टेकन ए न्यू लाइफ"। (आप भाग्यवान हैं, श्री बाजपेयी को नयी जिन्दगी मिल गयी।)

उपरोक्त सभी क्रियाओं के मध्य, श्री बाजपेयी जी जो बाहरी वातावरण से बिल्कुल अलहदा थे ने स्पष्ट देखा कि श्री गुरुदेव का मुखमण्डल प्रसन्न मुद्रा में कह रहा है कि, "लल्ला ! तुम्हारे इस महानतम क्लिष्ट संस्कार का भुगतान हमने करा दिया है, अब तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे।" इन्होंने मानसिक प्रणाम किया, श्री आराध्यदेव ने आशीर्वाद दिया एवं अन्तर्ध्यान हो गये। इस क्रिया के बाद श्री बाजपेयी जी संसार से जुड़ गये अर्थात् होश में आ गये। इनका स्वास्थ्य धीरे–धीरे सुधरने लगा एवं मात्र पाँच दिनों के बाद काम चलाऊ स्वस्थ होकर नर्सिंगहोम से अपने मकान पर आ गये एवं महीने भर बाद अपना कार्य करने योग्य बन गये।

वे कृपानिधान अहैतुकी कृपा सागर कब, किस पर, कैसे क्या कृपा करते है इस रहस्य को समझना सबके बस की बात नहीं है। इस रहस्य को केवल वही भाग्यवान साधक समझ पाते हैं जिसे अनाथनाथ कृपा करके समझा दिया करते हैं। इस प्रसंग को स्पष्ट करने वाली एक घटना याद आ रही है, जो निम्न प्रकार है–

लगभग पचासी या सन् उन्नीस सौ चौरासी के चैत्रमास की घटना है। मैं भी अपने पारिवारिक जनों के साथ योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के जन्मोत्सव एवं योग महामेला में भाग लेने श्री सिद्धगुफा सांवाई धाम गया था। उत्सव के प्रथम दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल नौमी की घटना है। श्री देवी प्रसाद शर्मा (दिव्य जी) श्री सिद्धयोग पत्रिका के जीवन पर्यन्त सम्पादक रहे एवं आराध्यदेव जी महाराज के अनन्य आज्ञापालक एवं विशेष कृपापात्र शिष्य रहे हैं। अपराह्न करीब तीन बजे का समय था। श्री दिव्य जी का लड़का आगरा से स्कूटर से आया एवं श्री प्रभु जी को प्रणाम करने के बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि पिताजी की तबियत बहुत ज्यादा खराब है, वे आने की स्थिति में नहीं है, हम लोगों को लगता है कि अब उनका अन्तिम

समय आ गया है। वे बेहोशी की हालत में हैं एवं जब भी होश में आते हैं सिर्फ इतना ही कहकर बेहोश हो जाते हैं कि, श्री गुरूदेव के पास चलो, उनके दर्शन कराओ। महाराज जी ! 'हम लोग उन्हें लाने की तैयारी कर चुके थे परन्तु डा० ने यह सलाह दी है कि यदि इन्हें अस्पताल से बाहर ले गये तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। यह ऐसी स्थिति में हैं कि इनका प्राणान्त कभी भी हो सकता है।" अतः मैं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि पिताजी को एक बार स्थूल दर्शन देने की कृपा करें। इतना कहते–कहते उस बच्चे का गला रुँध गया एवं उसकी आँखे भर आयीं। आश्रम से सम्बन्धित हमारे सभी गुरू भाईबहन इस सत्य से भली भाँति परिचित हैं कि श्री नौमी उत्सव के समय गुरूदेव जी महाराज कितने व्यस्त रहा करते थे।

श्री गुरूदेव जी महाराज करीब दो मिनट तक मौन रहे एवं फिर बोले, "अच्छा लल्ला, बैठ जाओ, मैं चलने का प्रबन्ध करता हूँ।" उन्होंने मास्टर नाथूराम शर्मा जो उनकी सेवा में वहीं बैठे थे, आवाज दी कि लल्ला ! पाँच मिनट के अन्दर गाडी लाओ, मुझे आगरा जाना है। वह भागे–भागे आश्रम के सामने वाली सड़क पर गये। सडक के किनारे खडे होकर वह यह विचार कर रहे थे कि कोई सवारी मिले तो एत्मादपुर या टूण्डला से गाडी ले आऊँ परन्तु काफी समय लग जायेगा। श्री गुरूदेव की आज्ञा यथाशीघ्र पूर्ण करने की नीयत से वे बड़े ही व्यग्र, चिन्तायुक्त एवं उदास खड़े थे। धोतीकुर्ता पहने हमारे एक आदरणीय गुरूभाई जो शौच से वापस आ रहे थे बोले कि मास्टर साहब क्या बात है, बडे बेचैन दिखलायी दे रहे हैं ? आदरणीय भाई श्री नाथूराम जी ने उन्हें पूरी बात बतलायी। उस आदरणीय गुरुभाई ने खडे–खडे एक मिनट आँखें बन्द की एवं फिर मुस्कुराते हुए बोले, "मास्टर साहब, घबराने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है, श्री प्रभुजी ने बरहन से सफेद रंग का अम्बेस्डर कार रवाना करके ही आपको गाडी लाने की आज्ञा दी है। गाडी मात्र दो मिनट के अन्दर आ रही है। इतना कहकर आदरणीय भाई जी आश्रम की तरफ चले गये एवं तब तक सफेद रंग की कार आती दिखायी दी। मास्टर साहब ने हाथ देकर रोका एवं पूछा 'आगरा चलोगे' ? उसने कहा--हाँ चलेंगे। मास्टर साहब ने कहा क्या लोगे ? उसने कहा 'सत्तर रूपये।' मास्टर साहब ने कहा "पचपन रुपये में चलोगे।" उसने कहा चलेंगे, जल्दी चलो। इधर तो जल्दी थी ही, उन्होंने गाड़ी आश्रम में लाकर गुरूदेव से प्रार्थना की। उसी समय श्री प्रभु जी परम आदरणीय भाई श्री शर्मा जी पर कृपा करने आगरा चले गये। इस प्रकार का श्री प्रभु जी का चिन्तन जब भी होता है मन बार–बार यही सोच समझकर आनन्दित एवं आह्लादित होता है कि यह सिद्ध योगेश्वरों का ऐसा दरबार है जिसका उदाहरण अन्यत्र मिलना असम्भव ही है। इस दरबार की महत्ता को अच्छी प्रकार जानकर किसी अनुभव युक्त साधक ने बिल्कुल अक्षरशः सत्य कहा है कि–

इस दर की गुलामी जिसे नसीब हो जाय।
उस गुलाम की सारी दुनिया गुलाम हो जाय।।

* * *

भाव-प्रसून

श्रीमती सरिता भारद्वाज

परम पिता परमेश्वर प्रभु तुम, पूर्ण ब्रह्म सर्वेश्वर हो।
अजर अमर सर्वज्ञ तुम्हीं हो, अविनाशी अखिलेश्वर हो।
योगी तुम योगेश तुम्हीं हो, महायोग योगेश्वर हो।
ज्ञानी तुम विज्ञान तुम्हीं हो, ज्ञान–जनक ज्ञानेश्वर हो।
सिद्धयोग की गूँज तुम्हीं हो, शंख निनाद तुम्हारा है।
योग ध्वजा है हस्त तुम्हारे, मुख से पावन जयकारा है।
जड़ चेतन जग में जो लक्षित सब में रूप तुम्हारा है।
आगम निगम पुराण वेद सब ने तो यही उचारा है।
गगन सूर्य की भाँति चमकता योग–प्रकाश तुम्हारा है।
'चन्द्र' चन्द्र समताप मिटाती योग की पावन धारा है।
ब्रह्मा तुम ही विष्णु तुम्हीं शिव जटा की पावन धारा है।
परम प्रकाश पूर्ण सर्वेश्वर सब में रूप तुम्हारा है।
कहाँ हो तुम और कहाँ नहीं हो ? किसमें निवास तुम्हारा है।
गिरि कन्दरा नदी वन उपवन सब में उच्छ्वास तुम्हारा है।
आशा तुम विश्वास तुम्हीं हो घट–घट वास तुम्हारा है।
श्वास–श्वास प्रश्वास में बसते, तीनों लोक तुम्हारा है।

हे दया के सिन्धु मुझको,
बिन्दु कुछ दे दीजिए।
नित्य प्रति भक्ति बढ़े मुझे
शक्ति ऐसी दीजिए।
ज्ञान क्या अज्ञान क्या है,
ज्ञान दे समझाइए
सत्य और असत्य क्या है।
कर कृपा बतलाइए।
क्रोध आदिक शत्रुओं से,
नाथ मुझको बचाइए।
वासना के कंटकों से,
हाथ थाम निकालिए।
चरण–कमलों को तजे ना,
भक्ति ऐसी दीजिए
चल सकें हम योग पथ पर,
ज्ञान ऐसा दीजिए।।

गीता में गूढ़ रहस्य

प्रो० डा० ऋषिराम शर्मा

(श्री परात्परब्रह्मस्वरूप गुरुदेव के चरणारविन्दों में श्रद्धांजलि)

मेरे गुरुदेव गीता के रहस्यों का सरल भाषा में उद्‌बोधन कराया करते थे। भारतीय संस्कृति तथा दर्शन का गीता एक महान शास्त्र है, क्योंकि–

सर्वोपनिषदो गावः दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधिर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

अर्थात् परमात्मा की अनादि शक्ति योगमाया से इस जगत की उत्पत्ति हुई, जिसमें पंच क्लेशों से आक्रान्त जीवात्मा का कर्मबन्धन प्रकट हुआ। जीवभाव से ग्रस्त जीवात्मा सुख–दुख का भोक्ता बन गया और परिणामस्वरूप जन्म–मृत्यु का आवागमन हुआ। मायिक विकारों के गुणात्मक आवरण ने जीवात्मा का सत्यस्वरूप छिपा दिया और जिस प्रकार चुम्बक पर मलावरण से उसकी चुम्बकीय शक्ति लुप्त प्रतीत होने लगती है उसी प्रकार जीवात्मा भी माया के आवरण से अपनी सच्चिदानन्द शक्ति को खो देता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार फिल्मप्रोजेक्टर से निकलने वाली प्रकाश किरणें पर्दे पर फिल्म के दृश्यों के रूप में ही प्रकट होती हैं और उनका सत्यस्वरूप लुप्त हो जाता है। इस भयंकर व्याधि से मुक्ति दिलाने हेतु ही स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा भगवान कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया। यह उपदेश सभी वेद शास्त्रों तथा उपनिषदों का मूलमन्त्र है। मानों कि गोपाल कृष्ण ने उपनिषद रूपी गायों से अर्जुनरूपी बछड़े के माध्यम से गीता–ज्ञानरूपी दुग्ध का दोहन किया हो जोकि सभी मुमुक्षु जीवात्माओं को मुक्ति प्रदान करने वाला अमृत है। मैं प्रयास करूँगा कि अपने भाई–बहिनों को इस अमृत से परिचय करा सकूँ। इस लेख में मैं गीता के त्रियोदश अध्याय में वर्णित क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के विषय में विचार करूँगा। भगवान का कहना है कि यह शरीर क्षेत्र है और इसको जानने वाला क्षेत्रज्ञ है। किन्तु शरीर तो अनेक हैं और उनको जानने वाले भी अनेक होने चाहिए। पर यह सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि सभी शरीरों का क्षेत्रज्ञ तो भगवान स्वयं अपने आपको बताते हैं। इसलिए हमें इस रहस्य को विस्तार से समझना चाहिए। भगवान कहते हैं कि–

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद् विकारि यतश्च यत्।
सः च यो यत् प्रभावश्च तत् समासेन मे श्रृणु।।
महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंचचेन्द्रियगोचराः।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्र समासेन सविकारमुदाहृतम्।

अर्थात् केवल प्रथक–प्रथक योनियों में दिखाई देने वाले शरीर ही क्षेत्र नहीं है, अपितु

जितना भी परिवर्तनशील एवं विकारयुक्त जगत है और माया की दोनों शक्तियों यानि विक्षेपशक्ति तथा आवरणशक्ति के द्वारा रचित जितने भी ब्रह्माण्ड है और उनमें शरीर धारण करने वाले जितने भी चित्त तथा अहंकार युक्त सूक्ष्म शरीर हैं, वह सभी क्षेत्र हैं। इतना ही नहीं, अपितु मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ और उनके द्वारा भोगे जाने वाले गन्ध, रस, स्पर्श, दर्शन तथा शब्द आदि विषय हैं, वह भी क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त सुख, दुःख, इच्छा, राग, द्वेष, धृति आदि समस्त चित्तवृत्तियाँ भी क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। जो भी हम चित्तवृत्तियों के माध्यम से अनुभव करते हैं वह सब के सब क्षेत्र के धर्म हैं न कि क्षेत्रज्ञ आत्मा के। यह तो अविद्या का प्रभाव है कि क्षेत्र के धर्म क्षेत्री में भासित होते हैं। जिस क्षण यह मिथ्या आभास समाप्त हो जायेगा उसी क्षण क्षेत्रज्ञ परमात्मा का साक्षात्कार हो जायेगा। इसीलिए गुरुगीता में घोषित किया है कि—

यदि देहं प्रथक्कृत्य चिदि विश्रम्य तिष्ठति।
अधनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यति।।

अर्थात् जैसे ही जीवात्मा अपने को क्षेत्र धर्मो से प्रथक कर अपने चित्तवृतिरहित सच्चिदानन्दन स्वरूप में स्थित हो जाता है उसी क्षण वह माया के बन्धन से मुक्त होकर परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप में लीन हो जाता है। अब प्रश्न उठता है कि शरीर को जानने वाला जीवात्मा तो परमात्मा हो नहीं सकता, क्योंकि जीवात्मा में संसारित्व विद्यमान रहता है और परमात्मा में संसारित्व हो नहीं सकता। इस प्रश्न के समाधान के लिए संसारित्व को समझना होगा।

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादि संकुलः।
स्वकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे असत्यवत् भवेत्।।

अर्थात् संसारित्व का अस्तित्व उतना ही है जितना कि स्वप्नजगत का। जिस प्रकार निद्रावरण के प्रभाव से स्वप्नावस्था में जागृत जगत मिथ्या हो जाता है और स्वप्न–जगत सत्य भासित होता है किन्तु निद्रावरण के हटते ही जागृत–जगत सत्य हो जाता है तथा स्वप्न–जगत मिथ्या हो जाता है, ठीक इसी प्रकार अविद्या के आवरण में संसार सत्य भासित हो रहा है। और सर्वव्यापक परमात्मा कल्पना–सा प्रतीत होता है। परन्तु अविद्या का आवरण हटते ही सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई देने लगता है और संसारित्व का अभाव हो जाता है। संसार की स्थिति केवल अज्ञानियों की दृष्टि में बनी रहती है, न कि ज्ञानियों की दृष्टि में। उदाहरण के लिए अन्धकार के कारण यदि किसी को रस्सी में सर्प दीखने लगा हो तो सर्पदंश का भय स्वतः पैदा हो जाता है और जैसे ही अन्धकार हट जाता है और रस्सी का ज्ञान हो जाता है तब सर्पभय बिना किसी प्रयास के स्वतः नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जैसे ही अविद्या का अन्धकार हटता है तो स्वतः ही संसारित्व का नाश हो जाता है। भगवान पतंजलि कहते हैं कि—

"तदाभावे संयोगाभावः हानं तद् दृश्येः कैवल्यम्"

अर्थात् अविद्या का अभाव होते ही दृष्टा यानि क्षेत्रज्ञ तथा दृश्य (क्षेत्र) के संयोग का अभाव

हो जाता है और इस संयोग का अभाव होने पर जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, यानि जीवभाव नष्ट हो जाता है और परमात्मभाव का साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार संसारित्व का भेद भी समाप्त हो जाता है। जब तक क्षेत्र के धर्म जीवात्मा को प्रभावित करते रहेंगे तब तक नित्य सुख, आत्यन्तिक शांति तथा परमानन्द की प्राप्ति संभव नहीं, क्योंकि क्षेत्र के धर्म त्रिगुणात्मक विकार हैं और सत्व, रज तथा तम का समुद्र की लहरों के समान निरन्तर प्रवाह चलता रहता है और उनका प्रभाव भी परस्पर विरोधी है और उनका चनत्व और उनका परिणाम भी कर्मफल के अधीन रहता है। अतः जब पुण्यकर्म अपना फल देते हैं तब प्रसन्नता प्रकट करने वाला परिणाम क्षेत्र का धर्म होता है और जब पापकर्म अपना फल देने के लिए उद्यत होता है तब गुणों का प्रभाव परिताप जनक तथा चिन्ताजनक होता है। यह प्रक्रिया स्वतः संचालित तथा स्वभाविक होती है जो कि अवश्यंभावी भी होती है। इसीलिए भगवान कृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि–

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।

अर्थात् परमात्मा सृष्टि का संचालक होते हुए भी न कर्म करता है और न कराता है और न कर्मफल का निर्धारण करता है, अपितु प्रकृति के गुणों के प्रवाह के आधीन स्वाभाविक प्रक्रिया होती रहती है। इसलिए हम सभी के जीवन में जो भी घटनायें घटती रहती हैं उनका एकमात्र कारण हमारे प्रारब्धकर्मों का फल है। इसी कारण भगवान कृष्ण स्पष्ट सन्देश देते हैं कि हमारा केवल पुरुषार्थ यानि कर्म करने में अधिकार है न कि इच्छानुसार कर्मफल प्राप्त करने में।

इस विश्लेषण में एक सत्य सामने आया कि हमारी सबसे बड़ी समस्या यही है कि हमने अपने स्वभाविक धर्मों का त्याग कर दिया है और परधर्म यानि शरीर के धर्म को अपना धर्म बना लिया है। इसीलिए तो हम दुखी, चिन्तित, क्रोधी, ईर्ष्यालु, घमण्डी तथा अशान्त रहते हैं। इन्द्रियों के विषयों में राग (आसक्ति तथा द्वेष) के चक्रव्यूह में फंस गये हैं। जब से हमने प्रकृति के धर्मों को अपना धर्म मान लिया है तब से प्रकृति द्वारा उत्पन्न गुणों के देहधारी जीवात्मा को मान–अपमान, शीत–ऊष्ण, काम–क्रोध, अच्छा–बुरा, हानि–लाभादि द्वन्दों की गाँठों में देह से बाँध रखा है। पार्थिव शरीर से मुक्ति मिलने पर भी सूक्ष्म–शरीर तथा कारण–शरीर का बन्धन बना ही रहता है। इस बन्धन के रहते हुए कर्माशयरूपी समुद्र में विभिन्न योनियों की लहरों का आवागमन ही जैसे हमारी नियति बन गई है। इस कर्मबन्धन से मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है अपनी असलियत को पहचानना अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति करना। यह ज्ञान है कि क्षेत्रज्ञ क्षेत्र से भिन्न है अतः क्षेत्र के धर्मों से क्षेत्रज्ञ के रूप में अपने को मुक्त रखना ही ज्ञान है। भगवान श्री कृष्ण भी यही प्रतिपादन करते हैं कि–

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा, शान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुखदोषानुदर्शनम्।।
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरति जर्नससादि।।
अध्यात्मज्ञान नित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एवत् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यत्तोऽन्यथा।।
ज्ञेयं यद् मद् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।

अर्थात् ज्ञानी तथा अज्ञानी की पहचान उनके सांसारिक व्यवहार से की जा सकती है, क्योंकि अज्ञानी शरीर के अहंकार के आधार पर व्यवहार करता है, वह अपने नाम तथा रूप के अपमान को अपना अपमान समझता है। किन्तु ज्ञानी का व्यवहार सर्वथा पूर्णरूपेण विपरीत होता है। आप सोचते होंगे कि शरीर पर पड़ने वाले कष्ट तो अपने को पीड़ा देते हैं फिर उनसे प्रभावित न हों, यह कैसे सम्भव है ? किन्तु जैसे किसी रंगीन तथा चित्रित माध्यम पर स्फटिक मणि को रख दिया जाय तो सभी रंग तथा चित्रमणि में दिखाई देने लगते हैं परन्तु मणि का माध्यम से संयोग हटा लिया गया तो मणि में कुछ नहीं दिखाई देता, केवल उसका शुद्ध स्वरूप ही दिखाई देता है। इसीलिए भगवान पतंजलि कहते हैं कि–

दृष्टा दृशिमात्रो शुद्धोऽपि प्रत्यानुपश्यः

अर्थात् आत्मतत्व केवल शरीरों का कूटस्थ दृष्टा है और वह सदैव शुद्ध, यानि विकार रहित है फिर भी अविद्या के कारण उसमें चित्तवृत्तियाँ ही दिखाई देती हैं और यही जीवभाव है। इसलिए ज्ञानी वह है जो शरीर के धर्मों से प्रभावित नहीं होता। वह मान–अपमान से प्रभावित नहीं होता, अपनी शारीरिक शक्ति का अहंकार नहीं करता, किसी भी प्राणी को अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसका सम्पूर्ण व्यवहार सब प्राणियों के कल्याण के निमित्त ही होता है, उसका मन परम शान्त तथा चिन्तामुक्त रहता है, छल–कपट रहित होता है, उसका शरीर उसको ज्ञान प्रदान करने वाले सद्गुरुदेव की सेवा में समर्पित होता है, उसकी, चित्तवृत्तियाँ मायिक विकारों से मुक्त होती हैं, वह परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप में अपने मन तथा बुद्धि को समाहित कर लेता है, इन्द्रियों के विषय और उनकी वासनायें उसके मन को आकर्षित नहीं कर सकती, शरीर का मिथ्या अहंकार उसके समाहित मन को विचलित नहीं कर सकता, क्योंकि वह जान गया है कि यह मिथ्या अहंकार ही जन्म–मृत्यु, बुढ़ापा तथा बीमारियों आदि के कर्म भोगों का एकमात्र कारण है। इसीलिए वह न कहीं आसक्त होता है और न सन्तान

तथा पत्नी आदि के प्रारब्ध भोगों को देखकर दुःखी होता है, अपितु उसके लिए ईष्ट तथा अनिष्ट प्रदान करने वाली सम्पूर्ण परिस्थितियाँ समान होती हैं। उसकी समस्त चित्त वृत्तियाँ एकाग्र होकर परमात्मा के दिव्य सच्चिदानन्दस्वरूप में समाहित हो जाती हैं। इसी कारण वह एकान्तप्रिय हो जाता है। उसकी बुद्धि अध्यात्म ज्ञान के चिन्तन में ही व्यस्त रहती है, वह आत्मतत्त्व के ज्ञान के रहस्यों को जान लेता है और आत्मतृप्त हो जाता है। बस यही ज्ञान है और उसके भिन्न सभी व्यवहार अज्ञान में होते हैं। जो भी भाग्यशाली प्राणी इस रहस्य का स्वाद चख लेता है, वह अमृत का पान कर जन्ममृत्यु के आवागमन से मुक्त हो जाता है। वास्तव में प्रत्येक प्राणी का वास्तविक स्वरूप तो अनादि विशुद्ध परम ब्रह्म ही है जो अनिर्वचनीय है, अक्षर है और अनिर्देश्य है। अतः भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो भी भक्तियोग अथवा सांख्ययोग अथवा कर्मयोग अथवा ध्यानयोग की साधना के द्वारा अथवा महापुरुषों के बचनों के आधार पर इस व्यवहार को अपने जीवन में अपना लेते हैं वह सब के सब भवसागर से पार हो जाते हैं। प्रकृति तथा पुरुष का विश्लेषण अन्य लेख में करेंगे। जय श्री गुरुदेव।

* * *

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (3/२०)

'वह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म तथा बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा इस जीव की हृदय रूप गुफा में छिपा हुआ है, सब की रचना करने वाले परमेश्वर की कृपा से जो मनुष्य उस संकल्प रहित परमेश्वर को और उसकी महिमा को देख लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से रहित होकर आनन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।'

बच्चों की पग-पग पर रक्षा करते हैं—गुरुदेव

श्रीमति परमेश्वरी शर्मा

सन् २००० दिनांक १६ मई सुबह करीब ८.३० बजे मैं रोज की तरह एच.एम.टी. स्थित श्री गौरी शंकर मन्दिर में जा रही थी। मन्दिर से केवल ५० कदम की दूरी पर जब मैं चीटियों को आटा डाल रही थी कि एक गाड़ी बड़ी तेजी से पीछे से आई और मुझसे बडी जोर से टकराई। मैं थोड़ी दूर जा कर गिरी और फिर वही गाडी मेरे पेट से होती हुई गुजर गई। जिसके कारण मेरे दाहिने पैर की हड्डी बुरी तरह से टूट गई, मेरे दाँत एवं आँख पर भी चोट आई। गाडी के मेरे पेट पर से उतर जाने की वजह से मेरा गॉल-ब्लैडर फट गया, आँतों को नुकसान पहुँचा और कुछ पसलियाँ भी बुरी तरह से टूट गई।

चोट लगने के तुरन्त बाद मुझे एच.एम.टी. हस्पताल में लाया गया और बिना देर किये डाक्टरों ने मुझे बडे हस्पताल (पी.जी.आइ., चण्डीगढ़) भेज दिया। पी.जी.आई. में पहुँचते ही मुझे प्राथमिक चिकित्सा दी गई और बाद में सभी डाक्टरों ने निर्णय लिया की मेरे पेट और पैर के दो बडे ऑप्रेशन करने पड़ेंगे। पेट में निरन्तर हो रहे रक्तस्राव के कारण उसी दिन मेरे पेट का ऑप्रेशन किया गया।

ऑप्रेशन के एक दिन के बाद (१८ मई को) मेरे सारे बदन पर सूजन आ गई और आवाज काफी भारी हो गई। मुझे सांस लेने में बहुत तकलीफ महसूस होने लगी सभी डाक्टर अपनी ओर से बहुत प्रयास कर रहे थे मुझे बचाने का पर मेरी हालत बिगडती जा रही थी। तभी मुझे अपने बेड के दाँई ओर एक काला कुत्ता नजर आया। मैंने अपने पति से इस बारे में बताया और कहा कि शायद मेरा अंत समय आ गया है तभी मुझे ये काला कुत्ता नजर आ रहा है और ये कहते-कहते मैंने जैसे ही सामने देखा तो मुझे गुरुदेव जी चन्द्रमोहन महाराज दिखाई दिये और मेरे देखते-देखते वो काला कुत्ता वहाँ से गायब हो गया। आज भी ये घटना किसी को बताते हुए मेरी आँखों में अश्रु आ जाते है कि कैसे गुरुदेव के आने से मेरी मृत्यु टल गई। मैंने अपने पति से भी इस बारे में बताया कि मुझे गुरुजी के दर्शन हुए है और उस दिन के बाद मेरी हालत खतरे से बाहर हो गई। परन्तु अभी भी मेरे पैर का ऑप्रेशन होना बाकी था उस पर अभी भी ट्रैक्शन लगा हुआ था जिससे मुझे काफी दर्द होता था। मेरे पैर के ऑप्रेशन के लिए डाक्टरों ने ५ जून २००० का दिन निश्चित किया।

मेरा दूसरा ऑप्रेशन ५ जून २००० को करीब दिन के १२.०० बजे आरम्भ हुआ। क्योंकि ऑप्रेशन मेरी जाँघ की हड्डी का था तो ऑप्रेशन के दौरान मेरा खून ज्यादा बहने लग गया और देखते ही देखते डाक्टरों ने छह और बोतल खून लाने को कहा। मेरी कमर से नीचे के हिस्से को सुन्न किया हुआ था। इसलिये मुझे डाक्टरों की सारी बातें सुनाई दे रही थी। खून

बहुत ज्यादा बह गया था इस लिए मुझे थोड़ी–थोड़ी बेहोशी होने लगी थी और मैंने डाक्टर को कहते सुना की मेरा बल्ड प्रेशर केवल ४० रह गया है और मेरी हालत काफी गम्भीर हो गई है। मेरी हालत जानने के लिए डाक्टर चाहते थे कि मैं उनसे कुछ बात करती रहूँ ताकि यदि मैं बेहोश होने लगूँ तो उन्हें पता चल जाए। तब मैंने अपने प्रभु जी का पाठ करना आरम्भ कर दिया कुछ ही देर में मैंने देखा की उस संकट की घड़ी में मेरे गुरुदेव एक बार फिर मेरे सामने आ कर खड़े हो गए और मुस्कराने लगे। ऑप्रेशन काफी लम्बा चला परन्तु गुरुदेव के दर्शन मुझे होते रहे और मैं पाठ करती रही। गुरुदेव की कृपा से मेरा ये ऑप्रेशन भी सफलता पूर्वक समाप्त हो गया। यही नहीं जब मुझे शाम के ५ बजे ऑप्रेशन थियेटर से दूसरे वार्ड में ले जाया जा रहा था तो मुझे श्री गणेश जी के बाल रूप के दर्शन हुए। आज जब भी मैं ये बात बताती हूँ तो मेरा मन भाव विभोर हो उठता है की संकट की उस घड़ी में मेरे गुरुदेव ने मुझे दर्शन दिए और मेरा सारा कष्ट काट दिया। वस्तुतः गुरुदेव अपने बच्चों की सदा रक्षा करते हैं।

* * *

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः
कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा
युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।।

(मुण्डक० ३/२/५)

'सर्वथा आसक्तिरहित और विशुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषिलोग इस परमात्मा को पूर्णतया प्राप्त होकर ज्ञान से तृप्त एवं परम शान्त हो जाते हैं, अपने आपको परमात्मा मे संयुक्त कर देने वाले वे ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्मा को सब ओर से प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मा में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।'

कथनी, करनी और रहनी

प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा

असली मेवा मिलती है। जो केवल पाखण्ड, प्रपंच, कपट दम्भ और शोशेबाजी में भरोसा करने वाले हैं ऐसे ठग्गू गुरुओं को जितनी जल्दी छोड़ दे उतनी जल्दी वह सम्भल सकता है।

"गुरोर्यस्यैव सम्पर्कात् परानन्दोऽभिजायते।
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः।।
तत्वज्ञैरुपदिष्टा ये तत्वज्ञास्ते न संशयः।
पशुभिश्चोपनिष्टा ये देवि ! ते पशवः स्मृताः।।
अभिज्ञस्त्वोद्धरेन्मूर्खं न मूर्खो मूर्खमुद्धरेत्।
शिलां संतारयेन्नोहिं किं शिला तारयेच्छिलाम्।।
धनेच्छा भय लोभाद्यैरयोग्यं यदि दीक्षयेत्।
देवताशापमाप्नोति कृतञ्च निष्फलं भवेत्।।
शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धिर्न जायते।।

योगी गुरु की भक्ति, सेवा या दीक्षा से शिष्य में शक्ति संचार होकर आत्मोत्थान होता है। भगवान सदाशिव ने संकेत किया है कि जिसके समीप जाते ही परमशान्ति और परम आनन्द की अनुभूति हो ऐसे गुरु का ही बुद्धिमान व्यक्ति को वरण करना चाहिये। जो लोग तत्ववेत्ता गुरु की शिक्षा प्राप्त करते हैं वे निःसन्देह एक दिन तत्वज्ञ बन जाते हैं। जो केवल नाम मात्र के गुरु और आचरण में पशु तुल्य हैं, उनसे शिक्षा प्राप्त कर एक दिन वे भी वैसे ही पशु तुल्य अविवेकी बन जाते हैं। जो आत्मतत्व के भीतरी रहस्यों के जानकार है वे तो मूर्खों को समझदार बना सकते हैं। जो स्वयं मूर्ख है और दूसरे मूर्ख का उद्धार कैसे कर सकता है यदि कोई गुरु का स्वांग करके धन की इच्छा (शिष्य से मोटी दक्षिणा मिलने की इच्छा से) अथवा किसी प्रकार के डर से जैसे कुछ लोग अपने कुकर्मों पर पर्दा डालने के लिए किसी भले आदमी को अपने जाल में फांसकर अपना चेला बना कर उसकी आड लेकर अपनी अच्छी छवि का दिखावा करते हैं। किन्तु अन्दर मन में भयभीत बने रहते हैं कि कहीं कलई न खुलजाय, अथवा किसी पद, प्रतिष्ठा के लोभवश योग दीक्षा के नाम से अपना व्यापार करते है तो अनीति करने के कारण शास्त्र मर्यादा के उल्लंघन से भगवान देवाधिदेव महादेव का शाप भोगना पड़ता है जिसके कारण उनके पास जो कुछ भी है उस सब से खाली होकर कहीं के नहीं रह पाते। दूसरे का कल्याण करने के लिए अपनी कुछ कमाई होनी चाहिये। बिना आत्मशक्ति के जब अपना ही कल्याण नहीं होता तो दूसरे का कल्याण क्या होगा ? शिला पर बैठकर कोई आजतक कभी नदी पार नहीं हुआ है। क्या एक शिला दूसरे पत्थर को नदी पर करा सकती है ? फिर एक मूर्ख दूसरे मूर्ख को दीक्षा देकर कैसे पार लगा सकता है ? दोनों का डूबना निश्चित है।

शक्तिपात के बिना मीठी–मीठी बातें करने से और प्रसाद देने से योगसिद्धि प्राप्त नहीं होती। शक्तिपात जितनी मात्रा में होता है उतनी मात्रा में ही योग सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिए हमेशा शक्तिपात के विधान को जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ, आत्मनिष्ठ ज्ञानी योगी गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिये, ऐसे–वैसे गुरु से अपने को बचाके रखने में ही समझदारी है।

गुरु शिष्य के पापों को ढोने वाला तथा उसके विकारों को ढूंढ–ढूंढ कर निकाल शिष्य के अन्तर्बाह्य को निर्मल बनाने वाला धोबी होता है। तीन कार्य एक में सन्निहित होते हैं तब वह गुरु कहलाता है। ये हैं धोबी का कार्य (मल धोने वाला) कुम्भकार का कार्य (मिट्टी को सुन्दर आकृतियाँ प्रदान करने वाला) तथा रंगरेज का कार्य (श्यामरंग, हरिरंग में रंगने वाला)। इस कर्म से वह विधाता की सृष्टि के पाप–पुण्य के परिणाम के अनुसार फल देने के नियम का भी अतिक्रमण कर जाता है। इस पाप मलायतन नश्वर काया को परमपावन अजर–अमर बनाकर शिष्य को कृतकृत्य बना देता है। उसका कार्य लोक शिक्षक का हुआ करता है। विद्यालय के शिक्षक को तो बंधी लीक का अनुसरण करने का अवसर रहता है किन्तु आध्यात्मिक लोक शिक्षक शून्य में चित्र–विचित्र रंग भरने वाला कुशल चितेरा होता है। देवर्षि नारद ने लोक शिक्षक होने के लिए एक कसौटी दी है–**वर्णाश्रमचार रता भगवद्भक्ति लालसाः।**

कामादि दोष निर्मुक्तास्ते सन्तो लोकशिक्षकाः।।

अर्थात् जो भगवद् भक्ति के रस में पगे परम प्रेम के अभिलाषी है तथा वर्णाश्रमोचित कर्त्तव्य पालन में तत्पर हैं एवं काम–क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि दोषों से मुक्त हैं वे ही लोक शिक्षा देने वाले सन्त पुरुष किसी का पथ प्रदर्शन करने के अधिकारी है अंगूठा टेक और घास खोदे गुरू बनकर क्या सिद्धवायेंगे।

सिद्धसिद्धान्तपद्धति में योगेश्वर गोरक्षनाथ का स्पष्ट आदेश है–**ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो, मिथ्यावादी विडम्बकः। स्वविश्रान्ति न जानाति परेषां स करोति किम्।। ७३**

अर्थात् जिसे योग विषयक ज्ञान नहीं है, केवल वाक्जाल में शिष्यों को उलझाकर उन्हें दिग्भ्रमित करता है। स्वयं ही उस परमतत्व में स्थिर होकर विश्रान्ति प्राप्त नहीं कर सका है वह दूसरों का मार्गदर्शन कैसे कर सकेगा ? ऐसे गुरु से दीक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

* * *

श्री रामलाल प्रभवे नमः

समस्त गुरुभाई बहिनों को सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि परमगुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का ११५वाँ जन्म महोत्सव श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम में ब्रह्मचारियों द्वारा दिनांक ९, १० तथा ११ अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। विशेष जानकारी के लिये सिद्धयोग कार्यालय में सम्पर्क करें। सभी प्रभुजी के भक्तों से निवेदन है कि उत्सव में भाग लेकर प्रभुकृपा के भागी बने। जय गुरुदेव

आश्रमवासी ब्रह्मचारीगण

श्री सिद्धगुफा, सवाई (एत्मादपुर) आगरा।

आय व्यय विवरण

वर्ष 35

आय		व्यय	
(1) नगद जमा कार्यालय में–		(1) प्रिंटिंग प्रेस भुगतान	89220=00
(2) ग्राहक शुल्क		छपाई व कागज	
(अ) वार्षिक	59767=00	(2) डाक टिकिट	4380=00
(ब) आजीवन	25000=00	(3) बाइंडिंग पुराने सैट	200=00
(3) सहयोग राशि		(4) बाइंडिंग (वर्ष 35 के)	300=00
जगदीश चन्द्र अहमदाबाद	10000=00	(5) रिक्शा भाड़ा आगरा	
ललित देव शर्मा पंचकुला	820=00	आना, जाना, फोन आदि	300=00
मोहरसिंह खोरड़िया झरिया	700=00	(6) कार्या. खर्च, स्टेशनरी	
अरुन सिंह आगरा	500=00	गोंद, लिफाफा आदि	500=00
बंसीलाल अरोड़ा रुड़की	251=00		
सुरेन्द्र बहादुर	110=00		94,900=00
महेश खण्डेलवाल जयपुर	101=00	शेष रोकड़	2349=00
	97249=00		
पिछले वर्ष बैंक में		पिछले वर्ष बैंक में	
जमा राशि	11668=00	जमा राशि	11668=00
कुल योग	108917=00	कुल योग	108917=00

... प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिवः। शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।।
अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति।।

(मनुस्मृति)

अर्थात्

इस जीवन (संसार) में किया गया अधर्म (अशुभ कर्म) तत्काल फल नहीं देता, जैसे बोई हुई पृथ्वी तत्काल फल नहीं देती। वह कुकर्म क्रमशः पक कर कर्ता की जड़ों तक को काट डालता है। अधर्म करने वाला पहले तो बढ़ता है, फलता-फूलता व सम्पन्न होता है, नौकर-चाकर, धन-वैभव के साधनों से सम्पन्न होता है, अपने ईर्ष्यालु शत्रुओं व प्रतिद्वन्द्वियों को जीत भी लेता है, पर अन्ततः वह जड़ सहित नष्ट हो जाता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन्द शर्मा द्वारा कर्मयोग लिथिंग प्रेस, [illegible]
राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित [illegible]
आगरा से प्रकाशित।